अणुभागाणं एय-पमाण-णियम-दंसणादो। ण च थोव-ट्ठिदि-अणुभाग-विरोहि-परिणामो तदो अब्भहिय-ट्ठिदि-अणुभागाणमविरोहित्तमल्लियइ१ ('उपसपेंरल्लिअ:' हैम ८, ४, १३९.), अण्णत्थ तह अदंसणादो। ण च अणियट्टिम्हि पदेस-बंधो एय-समयम्हि वट्टमाण-सव्व-जीवाणं सरिसो, तस्स जोग-कारणत्तादो। ण च तेसिं सव्वेसिं जोग२ (मु. जोगस्स सरिसत्तणे।) -सरिसत्तणे णियमो अत्थि लोगपूरणम्हि ट्ठिय-केवलीणं३ (ल. क्ष. ६२६. लोगे पुण्णे एक्का वग्गणा जोगस्स त्ति समजोगो त्ति णायव्वो। लोगपूरणसमुग्घादे वट्टमाणस्सेदस्स केवलिणो लोगमेत्तासेसजीवदेसेसु जोगाविभागपलिच्छेदा वड्ढिहाणीहिं विणा सरिसा चेय होदूण परिणमंति तेण सव्वे जीवपदेसा अण्णोण्णं सरिसधणियसरुवेण परिणदा संता एया वग्गणा जादा तदो समजोगो त्ति एसो तदवत्थाए णायव्वो। जोगसत्तीए सव्वजीवपदेसेसु सरिसभावं मोत्तूण विसरिस-भावाणुवलंभादो त्ति वुंत्त होइ। जयध. अ. पृ. १२३९.) व तहा पडिवायय-सुत्ताभावादो। तदो सरिस-परिणामत्तादो सव्वेसिमणियट्टीणं समाण-समय-संट्ठियाणं ट्ठिदि-अणुभाग-घाद तब्बंधोसरण४ (मु. घादत्तबंधोसरण) -गुणसेढिणिज्जरा-संकमाणं सरिसत्तणं सिध्दं। समाण-समय-संठिय-सव्वाणियटीणं ट्ठिदि-अणुभागखंडएसु सरिसं णिवदंतेसु घादिदावसेस-ट्ठिदि-अणुभागेसु सरिसत्तणेण चिट्ठमाणेसु अप्पणो पसत्थापसत्थत्तणं पयडीसु अछंडमाणीसु५ (मु. अ. छ्द्दमाणेसु।) कथं पयडिविणासस्स विवज्जासो? तम्हा दोण्हं वयणाणं मज्झे एक्कमेव सुत्तं होदि, जदो 'जिणा ण अण्णहा-वाइणो' तदो ण तव्वयणाणं६ (मु. तदो तव्वयणाणं।) विप्पडिसेहो इदि चे? सच्चमेयं, किंतु ण तव्वयणाणि, एयाइं आइल्ल ७ (मु. आइल्लु) -आइरिय-वयणाइं, तदो एयाणं विरोहस्सत्थि

समाधान --- यह दोष कोई दोष नहीं है, क्योंकि, प्रथम समयमें घात करके शेष बचे हुए स्थितिकाण्डकोंका और अनुभागकाण्डकोंका एकप्रमाण नियम देखा जाता है। दूसरे, अल्प-स्थिति और अल्प-अनुभागका विरोधी परिणाम उससे अधिक स्थिति और अधिक अनुभागोंके अविरोधीपनेको प्राप्त नहीं हो सकता है, क्योंकि, अन्यत्र वैसा देखनेमें नहीं आता है। परंतु इस कथनसे अनिवृत्तिकरणके एक समयमें स्थित संपूर्ण जीवोंके प्रदेशबन्ध सदृश होता है ऐसा नहीं समझ लेना चाहिये, क्योंकि, प्रदेशबन्ध योगके निमित्तसे होता है। परंतु अनिवृत्तिकरणके एक समयवर्ती उन सब जीवोंके योगकी सदृशताका कोई नियम नहीं पाया जाता है। जिस प्रकार

लोकपूरण समुध्दातमें स्थित केवलियोंके योगकी समानताका प्रतिपादक परमागम है, उस प्रकार अनिवृत्तिकरणमें योगकी समानताका प्रतिपादक परमागमका अभाव है। इसलिये समान (एक) समयमें स्थित संपूर्ण अनिवृत्तिकरण गुणस्थानवाले जीवोंके सदृश परिणाम होनेके कारण स्थितिकाण्डकघात, अनुभागकाण्डकघात, तथा उनका बन्धापसरण, गुणश्रेणीनिर्जरा और संक्रमणमें भी समानता सिध्द हो जाती है।

संभवो इदि। आइल्लाइरिय१ (मु. इदि आइरिय।) कहियाणं संतकम्म-कसायपाहुडाणं कथं सुत्तत्तणमिदि चे? ण, तित्थयर-कहियत्थाणं गणहरदेव-कय-गंथरयणाणं बारहंगाणं आइरिय-परंपराए णिरंतरमागणाणं जुग-सहावेण बुध्दीसु ओहट्टंतीसु भायणाभावेण पुणो ओहट्टिय आगयाणं पुणो सुट्टु-बुध्दीणं खयं दट्ठूण तित्थ-वोच्छेदभएण वज्ज-भीरुहि गिहिदत्थेहि आइरिएहि पोत्थएसु चडावियाणं असुत्तत्तण-विरोहादो। जदि एवं, तो एयाणं पि वयणाणं तदवयवत्तादो सुत्तत्तणं पावदि त्ति चे? भवदु दोण्हं मज्झे एक्कस्स सुत्तत्तणं, ण दोण्हं पि, परोप्पर-विरोहादो ॰ उस्सुत्तं लिहंता आइरिया कथं वज्ज-भीरुणो इदि चे? ण एस दोसो, दोण्हं मंज्झे एक्कस्सेव संगहे कीरमाणे वज्ज -

---

शंका --- इस तरह समान समयमें स्थित संपूर्ण अनिवृत्तिकरण गुणस्थानवालोंके स्थितिखंड और अनुभागखंडोंके समानरुपसे पतित होने पर, घात करनेके पश्चात् शेष रहे हुए स्थिति और अनुभागोंके समानरुपसे विद्यमान रहने पर और प्रकृतियोंके अपना अपना प्रशस्त और अप्रशस्तपनाके नहीं छोडने पर व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियोंके विनाशमें विपर्यास कैसे हो सकता है? अर्थात् किन्हीं जीवोंके पहले आठ कषायोंके नष्ट हो जाने पर सोलह प्रकृतियोंका नाश होता है, और किन्हीं जीवोंके पहले सोलह प्रकृतियोंसे नष्ट हो जाने पर पश्चात् आठ कषायोंका नाश होता है, यह बात कैसे संभव हो सकती है? इसलिये दोनों प्रकारके वचनोंमेंसे कोई एक वचन ही सूत्ररुप हो सकता है, क्योंकि, जिन अन्यथावादी नहीं होते। अत: उनके वचनोंमें विरोध नहीं होना चाहिये।

समाधान --- यह कहना सत्य है कि उनके वचनोंमें विरोध नहीं होना चाहिये, परंतु ये जिनेन्द्रदेवके वचन न होकर इस युगके आचार्योंके वचन हैं, इसलिये उन वचनोंमें विरोध होना संभव है।

शंका --- तो फिर इस युगके आचार्योंके व्दारा कहे गये सत्कर्मप्राभृत और कषाय-प्राभृतको सूत्रपना कैसे प्राप्त हो सकता है?

समाधान --- नहीं, क्योंकि, जिनका अर्थरुपसे तीर्थंकरोंने प्रतिपादन किया है, और गणधरदेवने जिनकी ग्रन्थ-रचना की ऐसे बारह अंग आचार्य-परंपरासे निरन्तर चले आ रहे हैं। परंतु कालके प्रभावसे उत्तरोत्तर बुध्दिके क्षीण होने पर उन अंगोंको धारण करनेवाले योग्य पात्रके अभावमें वे उत्तरोत्तर क्षीण होते हुए आ रहे हैं। इसलिये जिन आचार्योंने आगे श्रेष्ठ बुध्दिवाले पुरुषोंका अभाव देखा और जो अत्यन्त पापभीरु थे और जिन्होंने गुरू परम्परासे श्रुतार्थ ग्रहण किया था उन आचार्योंने तीर्थविच्छेदके भयसे उस समय अविशिष्ट रहे हुए अंग-संबन्धी अर्थको पोथियोंमें लिपिबध्द किया, अतएव उनमें असूत्रपना नहीं आ सकता है।

भोरुत्‍ फिट्टदि त्ति१ (मु. णिवट्टत्ति।) ? दोण्हं पि संगहं करेंताणमाइरियाणं वज्ज-भीरुत्ताविणासादो। दोण्हं वयणाणं मज्झे कं वयणं सच्चमिदि चे? सुदकेवली केवली वा जाणदि, ण अण्णों, तहा णिण्णयाभावादो। वट्टमाण-कालाइरिएहि वज्ज-भीरुहि दोण्हं पि संगहो कायव्वो, अण्णहा वज्जभीरुत्त-विणासादो त्ति।

तदो अंतोमुहुत्तं गंतूण चउसंजलण-णवणोकसायाणमंतरं करेदि। सोदयाण-मंतोमुहुत्त-मेत्तिं पढम-ट्ठिदिं अणुदयाणं समऊणावलिय-मेत्तिं पढम-ट्ठिदिं२ (संजलणाणं एक्कं वेदाणेक्कं उदेदि तद्दोण्हं। सेसाणं पढमट्ठिदि ठवेदि अंतोमुहुत्तआवलिंय। ल. क्ष. ४३४.) करेदि। तदो अंतरकरणं काउण पुणो अंतोमुहुत्ते गदे णवुंसय-वेदं खवेदि। तदो अंतोमुहुत्तं गंतूणित्थिवेदं खवेदि। तदो अंतोमुहुत्तं गंतूण छण्णोकसाए पुरिसवेद-चिराण-संत -

---

शंका --- यदि ऐसा है, इन दोनों ही वचनोंको व्दादशांगका अवयव होनेसे सूत्रपना प्राप्त हो जायगा?

समाधान --- दोनोंमेंसे किसी एक वचनको सूत्रपना भले ही प्राप्त होओ, किंतु दोनोंको सूत्रपना नहीं प्राप्त हो सकता है, क्योंकि, उन दोनों वचनोंमें परस्पर विरोध पाया जाता है।

शंका --- उत्सूत्र लिखनेवाले आचार्य पापभीरु कैसे हो सकते हैं?

समाधान --- यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, दोनों प्रकारके वचनोंमेंसे किसी एक ही वचनके संग्रह करने पर पापभीरुता निकल जाती है, अर्थात् उच्छृ खलता आ जाती है। किन्तु दोनों प्रकारके वचनोंका संग्रह करनेवाले आचार्योंके पापभीरुता नष्ट होती है, अर्थात् बनी रहती है।

शंका --- दोनों प्रकारके वचनोंमेंसे किस वचनको सत्य माना जाय?

समाधान --- इस बातको केवली या श्रुतकेवली जानते हैं, दूसरा कोई नहीं जानता। क्योंकि, इस समय उसका निर्णय नहीं हो सकता है, इसलिये पापभीरु वर्तमानकालके आचार्योंको दोनोंका ही संग्रह करना चाहिये, अन्यथा पापभीरुताका विनाश हो जायगा।

तत्पश्चात् आठ कषाय या सोलह प्रकृतियोंके नाश होनेपर एक अन्तर्मुहूर्त जाकर चार संज्वलन और नौ नो-कषायोंका अन्तर करता है। अन्तरकरण करनेके पहले चार संज्वलन और नौ नो-कषायसंबन्धी तीन वेदोंमेंसे जिन दो प्रकृतियोंका उदय रहता है उनकी प्रथमस्थिती अन्तर्मुहूर्तमात्र स्थापित करता है, और अनुदयरुप ग्यारह प्रकृतियोंकी प्रथमस्थिति एक समयकम आवलीमात्र स्थापित करता है। तत्पश्चात् अन्तरकरण करके एक अन्तर्मुहूर्त जाने पर

कम्मेण सह सवेद-दुचरिम-समए जुगवं खवेदि। तदो१ ('समऊण' इत्यधिकेन पाठेन भाव्यम्। समऊण दोण्णिआवलिपमाणसमयप्पबध्दणवबंधो। ल. क्ष. ४६१.) दो-आवलिय-मेत्त-कालं गंतूण पुरिसवेदं खवेदि। तदो अंतोमुहुत्तमुवरि गंतूण माण-संजलणं खवेदि। तदो अंतोमुहुत्तं गंतूण माया-संजलणं खवेदि। तदो अंतोमुहुत्तं२ (अणियट्टिगुणट्ठाणे मायारहिदं च ट्ठाणमिच्छंति। ट्ठाणा भंगपमाणा कोई एवं परुवेंति।। गो.क. ३९२.) गंतूण सुहुम-सांपराइय-गुणट्ठाणं पडिवज्जदि। सो वि सुहुम-सांपराइओ अप्पणो चरिमसमए लोभ-संजलणं खवेदि। तदो से काले खीणकसाओ होदूण अंतोमुहुत्तं गमिय अप्पणो अध्दाए दु-चरिम-समए णिद्दा-पयलाओ दो वि अक्कमेण खवेदि। तदो से काले पंचणाणावरणीय-चदुदंसणावरणीय-पंचअंतराइयमिदि चोद्दसपयडीओ अप्पणो चरिम-समए खवेदि। एदेसु सट्ठि-कम्मेसु खीणेसु सजोगिजिणो होदि। सजोगिकेवली ण किंचि

कम्मं खवेदि। तदो कमेण विहरिय जोग-णिरोहं-काऊण अजोगकेवली ३ (मु. अजोगिकेवली) होदि। सो वि अप्पणो दु-चरिम-समए ---

---

नपुंसकवेदका क्षय करता है। तदनंतर एक अन्तर्मुहूर्त जाकर स्त्रीवेदका क्षय करता है। फिर एक अन्तर्मुहूर्त जाकर सवेद-भागके द्विचरम समयमें पुरुषवेदके पुरातन सत्तारुप कर्मोंके साथ छह नो-कषायका एकसाथ क्षय करता है। तदनंतर दो आवलीमात्र कालके व्यतीत होने पर पुरुषवेदका क्षय करता है। तत्पश्चात् एक अन्तर्मुहूर्त ऊपर जाकर क्रोध-संज्वलनका क्षय करता है। इसके पीछे एक अन्तर्मुहूर्त ऊपर जाकर मान-संज्वलनका क्षय करता है। इसके पीछे एक अन्तर्मुहूर्त ऊपर जाकर माया-संज्वलनका क्षय करता है पुन: एक अन्तर्मुहूर्त ऊपर जाकर सूक्ष्मसांपराय गुणस्थानको प्राप्त होता है। वह सूक्ष्मसांपराय गुणस्थानवाला जीव भी अपने गुणस्थानके अन्तिम समयमें लोभ-संज्वलनका क्षय करता है । उसके बाद तदनंतर समयमें क्षीणकषाय गुणस्थानको प्राप्त करके और अन्तर्मुहूर्त बिताकर अपने कालके द्विचरम समयमें निद्रा और प्रचला इन दो प्रकृतियोंका एकसाथ क्षय करता है। इसके पीछे अपने कालके अन्तिम समयमें पांच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण और पांच अन्तराय इन चौदह प्रकृतियोंका क्षय करता है। इस तरह इन साठ कर्म-प्रकृतियोंका क्षय हो जानेपर यह जीव सयोगकेवली जिन होता है। सयोगी जिन किसी भी कर्मका क्षय नहीं करते हैं। इसके पीछे विहार करके और क्रमसे योगनिरोध करके वे अयोगिकेवली होते हैं। वे भी अपने कालके द्विचरम समयमें वेदनीयकी दोनों प्रकृतियोंमेंसे अनुदयरुप कोई एक, देवगति, पांच शरीर, पांच शरीरोंके संघात, पांच शरीरोके बन्धन, छह संस्थान, तीन आंगोपांग, छह संहनन,

---

अणुदयवेदणीय-देवगदि-पंचसरीर-पंचसरीरसंघाद-पंचसरीरबंधण-छस्संठाण-तिण्णि-अंगोवंग-छस्संघडण-पंचवण्ण-दोगंध -पंचरस-अट्ठफास-देवगदिपाओग्गाणुपुव्वि-अगुरुव-लहुव-उवघाद-परघाद-उस्सास-दोविहायगदी-अप्पज्जत-पत्तेय-थिर-अथिर-सुभ-असुभ दूभग-सुस्सर-दुस्सर-अणादेज्ज-अजसगित्ति-णिमिण-णीचागोदाणि त्ति एदाओ बाहत्तरि पयडीओ खवेदी। तदो से काले सोदय-वेदणीय-मणुसाउ-मणुसगइ-पंचिंदिय-जादि-मणुसगइपाओग्गाणुपुव्वी-तस-बादर-पज्जत्त-सुभग-आदेज्ज-जसगित्ति-तित्थयर-उच्चागोदाणि त्ति एदाओ तेरस पयडीओ खवेदि, अहवा

मणुसगइपाओग्गाणुपुव्वीए सह तेहत्तरि पयडीओ दुचरिम-समए णट्ठाओ बारह चरिमसमए १ (बाहत्तरि पयडीओ दुचरिमगे तेरस च चरिमम्हि ल. क्ष. ३४४. xx व्दिसप्तति: कर्माणि स्वरुपसत्तामधिकृत्य क्षयमुपगच्छन्ति, चरमसमये स्तिबुकसंक्रमेणोदयवतीसु मध्ये संक्रम्यमाणत्वात्। चरमसमये चान्यतरवेदनीयमनुष्यत्रिकपंचेन्द्रियजातित्रसुभगादययश:कीर्तिपर्याप्तबादरतीर्थकरोच्चैर्गोत्ररु-पाणां त्रयोदश-प्रकृतीनां सत्ताव्यवच्छेद:। अन्ये त्वाहु:- 'मनुष्यानुपूर्व्या व्दिचरमसमये व्यवच्छेद उदयाभावात्, उदयवतीनां हि स्तिबुकसंक्रमाभावात् स्वरुपेण चरमसमये दलिकं दृश्यत एवेति युक्तस्तासां चरमसमये सत्ताव्यवच्छेद:। आनुपूर्वीणां च चतसृणामपि क्षेत्रविपाकतयाऽपान्तरालगतावेवोदय इति न भवस्थस्य तदुदयसंभव: इत्ययोग्यवस्थाध्दिचरमसमय एव मनुष्यानुपूर्व्या: सत्ताव्ययच्छेद:'। तन्मते व्दिचरमसमये त्रिसप्तते:, चरमसमये च व्दादशानां सत्ताव्यवच्छेद:। क. प्र. य. उ. टी. पृ. ६४ x x त्रयोदशैता: प्रकृती: क्षपयित्वान्तिमे क्षणे। अयोगिकेवली सिध्द्येन्निर्मूलगतकल्मष:।। मतान्तरेऽत्रानुपूर्वी क्षिपत्युपान्तिमक्षणे। ततस्त्रिसप्ततिं तत्र व्दादशान्त्ये क्षणे क्षिपेत्।। लो. प्र. १, १२७५, १२७६.) , उप्पायाणुच्छेदादो २ (वोच्छेदो दुविहो उप्पादाणुच्छेदो अणुप्पादाणुच्छेदो चेदि। उत्पाद: सत्त्वं, अनुच्छेदो विनाश: अभाव: निरुपित इति यावत्। उत्पाद एव अनुच्छेद: उत्पादानुच्छेद: भाव एव अभाव इति यावत्। एसो दव्वट्ठिययव्यवहारो। अनुत्पाद: असत्त्वं, अनुच्छेदो विनाश:। अनुत्पाद एव अनुच्छेद: असत: अभाव इति यावत्। सत: असत्त्वविरोधात्। एसो पज्जवट्ठियणयव्यवहारो। धवला अ. पृ. ५७७.) । तदो उवरिम-समए णीरओ णिम्मलो सिध्दो होदि। तत्थ जे कम्म-क्खवणम्हि वावदा ते जीवा खवगा उच्चंति। जे पुण तेसिं चे उवसामणम्हि

पांच वर्ण, दो गन्ध, पांच रस, आठ स्पर्श, देवगति-प्रायोग्यानूपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्त-विहायोगति, अप्रशस्त-विहायोगति, अपर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, सुस्वर, दु:स्वर, अनादेय, अयशस्कीर्ति, निर्माण और नीच-गोत्र, इन बहत्तर प्रकृतियोंका क्षय करते हैं। इसके बाद तदनन्तर समयमें दोनों वेदनीयमेंसे उदयागत कोई एक वेदनीय, मनुष्यायु, मनुष्यगति, पंचेन्द्रियजाति मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, त्रस, बादर, पर्याप्त, सुभग, आदेय, यशस्कीर्ति, तीर्थंकर और उच्च-गोत्र, इन तेरह प्रकृतियोंका क्षय करते हैं। अथवा,

मनुष्यगति- प्रायोग्यानुपूर्वीके साथ अयोगि-केवलीके व्दिचरम समयमें तेहत्तर प्रकृतियोंका और चरम समयमें बारह प्रकृतियोंका क्षय करते हैं। यह क्षपणाका कथन उत्पाद अर्थात् भाव ही अनुच्छेद अर्थात् अभाव है इसप्रकार द्रव्यार्थिकनयरुप व्यवहारकी मुख्यतासे किया है।

वावदा ते उवसामगा।

गदि-मग्गणावयव-देवगदिम्हि गुण-मग्गणट्ठं सुत्तमाह ---

देवा चदुसु ट्ठाणेसु अत्थि मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी सम्मामिच्छाइट्ठी असंजदसम्माइट्ठि त्ति [१] (देवगतौ नारकवत्। स. सि. १,८.)[९] १२९

देवाश्चतुर्षु स्थानेषु सन्ति। कानि तानीति चेन्मिथ्यादृष्टिः सासादनसम्यग्दृष्टिः सम्यग्मिथ्यादृष्टिः असंयतसम्यग्दृष्टिश्चेति। प्रागुक्वतार्थतन्नैतेषां गुणस्थानानामिह स्वरुपमुच्यते।

तदनन्तर आगेके समयमें कर्मरजसे रहित निर्मलदशाको प्राप्त सिध्द हो जाते हैं। इनमेंसे जो जीव कर्म-क्षपणमें व्यापार करते हैं उन्हे क्षपक कहते हैं और जो जीव कर्मोंके उपशमन करनेमें व्यापार करते हैं उन्हें उपशामक कहते हैं।

विशेषार्थ --- चौदहवें गुणस्थानमें अधिकसे अधिक पचासी प्रकृतियोंकी सत्ता रहती है। उनमेंसे बहत्तर प्रकृतियोंका उपान्त्य समयमें और उदयागत बारह तथा मनुष्यगत्यानुपूर्वी इसप्रकार तेरह प्रकृतियोंका अन्त समयमें क्षय होता है। सर्वार्थसिध्दी, राजवार्तिक, गोमट्टसार, आदि ग्रन्थोंमें इसी एक मतका उल्लेख मिलता है। किंतु यहां मनुष्यगत्यानुपूर्वीका उपान्त्य समयमें भी क्षय बतलाया गया है, जिसका उल्लेख कर्मप्रकृति आदि ग्रन्थोंमें भी मिलता है। तथा उसकी पुष्टिके लिये इसप्रकार समर्थन भी किया गया है कि अनुदयप्राप्त प्रकृतियोंका स्तिबुकसंक्रमणके व्दारा उदयागत बारह प्रकृतियोंमें ही उपान्त्य समयमें संक्रमण हो जाता है। अतः मनुष्यगत्यानपूर्वीका भी उपान्त्य समयमें ही सत्त्वनाश हो जाता है, क्योंकि, मनुष्य-गत्यानुपूर्वीका उदय केवल विग्रहगतिके गुणस्थानोंमें ही होता है, शेषमें नहीं। इसप्रकार दूसरे आचार्योंके मतानुसार उपान्त्य समयमें मनुष्यगत्यानुपूर्वी-सहित तेहत्तर और अन्त समयमें बारह प्रकृतियोंका सत्त्व नाश होता है।

अब गतिमार्गणाके अवयवरुप देवगतिमें गुणस्थानोंके अन्वेषण करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं ---

मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि, इन चार गुणस्थानोंमें देव पाये जाते हैं ।।२८।।

देव चार गुणस्थानोंमें पाये जाते हैं।

शंका --- वे चार गुणस्थान कौनसे हैं?

समाधान --- मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि, इसप्रकार देवोंके चार गुणस्थान होते हैं।

अथ स्याद्यासु याभिवो जीवा: मृग्यन्ते ता: मार्गण इति प्राड: मार्गणाशब्दस्य निरुक्तिरुक्ता, आर्षे चेयत्सु गुणस्थानेषु नारका: सन्ति, तिर्यञ्च: सन्ति, मनुष्या: सन्ति, देवा: सन्तीति गुणस्थानेषु मार्गणा अन्विष्यन्ते,१ (मु. स्थानेषु अन्विष्यन्ते।) अतस्तद्व्याख्यानमार्षविरुध्दमिति? नैष दोष:, 'णिरय-गईए णेरईएसु मिच्छाइट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया २ (जी, द. सू. १२.)१२.)' इत्यादिभगवद्-भूतबलिभट्टारकमुखकमलविनिर्गतगुणसंख्यादिप्रतिपादकसूत्राश्रयेण तन्निरुक्ते-रवतारात् । कथमनयोर्भूतबलिपुष्पदन्तवाक्ययोर्न विरोध इति चेन्न विरोध:। कथमिदं तावत्? निरुप्यते। न तावदसिध्देन असिध्दे वासिध्दस्यान्वेषणं सम्भवति, विरोधात्। नापि सिध्दे सिध्दस्यान्वेषणम्, तत्र तस्यान्वेषणे फलाभावात्। तत: सामान्याकारेण सिध्दानां जीवानां गुणसत्त्वद्रव्यसंख्यादिविशेषरुपेणासिध्दानां त्रिकोटिपरिणामात्मकानादिबन्धनबध्द-ज्ञानदर्शनलक्षणात्मास्तित्वान्यथानुपपत्तित: सामान्यकारेणणावगतानां गत्यादीनां मार्गणानां च विशेषतोऽनवगतानामिच्छात: आधाराधेयभावो भवतीति नोभयवाक्ययोर्विरोध:।

इन गुणस्थानोंका स्वरुप पहले कह आये हैं, इसलिये यहां पर उनका स्वरुप पुन: नहीं कहते हैं।

शंका --- जिनमें अथवा जिनके व्दारा जीवोंका अन्वेषण किया जाता है उन्हें मार्गणा कहते हैं। इस प्रकार पहले मार्गणा शब्दकी निरुक्ति कह आये हैं। और आर्षमें तो इतने

गुणस्थानोंमें नारकी होते हैं, इतनेमें तिर्यंच होते हैं, इतनेमें मनुष्य होते हैं और इतनेमें देव होते हैं, इस प्रकार गुणस्थानोंमें मार्गणाओंका अन्वेषण किया जा रहा है । इसलिये उक्त प्रकारसे मार्गणाकी निरुक्ति करना आर्षविरुध्द है?

समाधान --- यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, 'नरकगतिमें नारकियोंमें मिथ्यादृष्टि द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं', इत्यादी रुपसे भगवान् भूतबलि भट्टारकके मुख-कमलसे निकले हुए गुणस्थानोंका अवलम्बन लेकर संख्या आदिके प्रतिपादक सूत्रोंके आश्रयसे उक्त निरुक्तिका अवतार हुआ है।

शंका --- तो भूतबलि और पुष्पदन्तकेइन वचनोंमें विरोध क्यों न माना जाय?

समाधान --- उनके वचनोंमें विरोध नहीं है। यदि पूछो किस प्रकार? तो आगे इसी बातका निरुपण करते हैं। असिध्दके व्दारा अथवा असिध्दमें असिध्दका अन्वेषण करना तो संभव नहीं है, क्योंकि, इसतरह अन्वेषण करनेमें तो विरोध आता है। उसीप्रकार सिध्दमें सिध्दका अन्वेषण करना भी उचित नहीं है, क्योंकि, सिध्दमें सिध्दका अन्वेषण करने पर कोई फल नहीं है। इसलिये स्वरुप-सामान्यकी अपेक्षासे सिध्द, किन्तु गुण-सत्व अर्थात् गुणस्थान, द्रव्यसंख्या आदि विशेषरुपसे असिध्द

अतीतसूत्रोक्तार्थविशेषप्रतिपादनार्थमुत्तरसूत्रचतुष्टयमाह ---

तिरिक्खा सुध्दा एइंदियप्पहुडि जाव असण्णि-पंचिंदिया त्ति ।।२९।।

एकमिन्द्रियं येषां त एकेन्द्रिया:। प्रभृतिरादि:, एकेन्द्रियान् प्रभृति कृत्वा, अध्याहृतेन कृत्वेत्यनेनाभिसम्बन्धादस्य नपुंसकता। असंज्ञिनश्च ते पञ्चेन्द्रियाश्च असंज्ञिपञ्चेन्द्रिया:। यत्परिमाणस्येति यावत्। यावदसंज्ञिपञ्चेन्द्रिया: शुध्दास्तिर्यञ्च:। किमित्येतदुच्यत इति चेन्न, अन्यथामुष्यां गतावेकेन्द्रियादयोऽसंज्ञि-पञ्चेन्द्रियपर्यपन्ता: वर्तन्त इत्यवगमोपायाभावतस्तदवजिगमयिषायै एतत्प्रतिपादनात्।

असाधारणतिरश्च: प्रतिपाद्य साधारणतिरश्चां प्रतिपादनार्थमुत्तरसूत्रमाह ---

---

जीवोंका तथा उत्पाद, व्यय और ध्रौव्यरुप त्रिंकोटिसे परिणमनशील अनादि-कालीन बन्धनसे बंधे हुए, तथा ज्ञान और दर्शन लक्षण स्वरुप आत्माके अस्तित्वकी सिध्दि अन्यथा हो नहीं सकती है,

इसलिये सामान्यरुपसे जानी गई और विशेषरुपसे नहीं जानी गई ऐसी गति आदि मार्गणाओंका इच्छासे आधार-आधेयभाव बन जाता है। अर्थात् जब गुणस्थान विवक्षित होते हैं तब वे आधार-भावको प्राप्त हो जाते हैं और मार्गणाएँ आधेयपनेको प्राप्त होती हैं। उसीप्रकार जब मार्गणाएँ विवक्षित होती हैं तब वे आधारभावको प्राप्त हो जाती हैं और गुणस्थान आधेयपनेको प्राप्त होते हैं। इसलिये भूतबलि और पुष्पदन्त आचार्योंकेवचनोंमें कोई विरोध नहीं समझना चाहिये।

विशेषार्थ --- वहाँ पर आचार्य पुष्पदन्तने गुणस्थानोंको आधार बनाकर मार्गणाओंका प्रतिपादन किया है तथा आचार्य भूतबलिने आगे मार्गणाओंको आधार बनाकर गुणस्थानोंका प्रतिपादन किया है। अत: दोनोंका कथनमें कोई विरोध नहीं है।

अब पूर्व सूत्रोंमें कहे गये अर्थकेविशेष प्रतिपादन करनेकेलिये आगेकेचार सूत्र कहते हैं -

एकेन्द्रियसे लेकर असंज्ञी पंचेन्द्रिय तककेजीव शुध्द तिर्यंच हैं ।।२९।।

जिनके एक ही इन्द्रिय होती है उन्हें एकेन्द्रिय कहते हैं। प्रभृतिका अर्थ आदि है। 'एकेन्द्रियको आदि करके' इस प्रकारके अर्थमें, अध्याहृत ' कृत्वा ' इस पदके साथ 'एकेन्द्रियप्रभृति' इस पदका संबन्ध होनेसे इस पदको नपुंसक-लिंग कहा है। जो असंज्ञी होते हुए पंचेन्द्रिय होते हैं उन्हें असंज्ञी-पंचेन्द्रिय कहते हैं। जिसका जितना परिमाण होता है, उसकेउस परिमाणको प्रगट करनेकेलिये 'यावत्' शब्दका प्रयोग होता है। इसप्रकार असंज्ञी पंचेन्द्रिय तकके जीव शुध्द तिर्यंच होते हैं।

शंका --- इस प्रकारका सूत्र क्यों कहा?

तिरिक्खा मिस्सा सण्णि-मिच्छाइट्ठि-प्पहुडि जाव संजदा-संजदा त्ति ।।३०।।

संज्ञिमिथ्यादृष्टिप्रभृति यावत्संयतासंयतास्तावत्तिर्यञ्चो मिश्रा:। न तिरश्चामन्यै: सह मिश्रणमवगम्यते। कथं? न तावत्संयोगोऽस्यार्थ:, तस्योपरितन-गुणष्वपि सत्त्वात्। नैकत्वापत्तिरर्थ:, व्दयोरेकस्याभावतो व्दित्वादिनिबन्धनमिश्रता-नुपपत्तेरिति? न प्रथमविकल्प:, अनभ्युपगमात्। न व्दितीयविकल्पोक्तदोषोऽपि, गुणकृतसादृश्यमाश्रित्य तिरश्चां मनुष्यगतिजीवैर्मिश्रभावाभ्युपगमात्। तद्यथा-

मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्टिगुणैतित्रयगत-जीव-साम्यात्तैस्ते मिश्रा:, संयमासंयमगुणेन मनुष्यै: सह साम्यात्तिर्यञ्चो मनुष्यै: सहैकत्व ---

---

समाधान --- नहीं, क्योंकि, यदि उक्त सूत्र नहीं कहते तो 'इस (तिर्यंच) गतिमें ही एकेन्द्रियको आदि लेकर असंज्ञी पंचेन्द्रियतकके जीव होते हैं' इस बातके जाननेके लिये कोई दूसरा उपाय नहीं था। अत: उक्त बातको जतानेके लिये ही उक्त सूत्रका प्रतिपादन किया गया है।

असाधारण (शुध्द) तिर्यंचोंका प्रतिपादन कर अब साधारण (मिश्र) तिर्यंचोंके प्रतिपादन करनेकेलिये आगेका सूत्र कहते हैं ---

संज्ञी-पंचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टिसे लेकर संयतासंयत गुणस्थानतक तिर्यंच मिश्र होते हैं ।।३०।।

संज्ञी-मिथ्यादृष्टिसे लेकर संयतासंयत तक तिर्यंच मिश्र हैं।

शंका --- तिर्यंचोंका किसी भी गतिवाले जीवोंके साथ मिश्रण समझमें नहीं आता, क्योंकि, इस मिश्रणका अर्थ संयोग तो हो नहीं सकता है? यदि मिश्रणका अर्थ अन्य गतिवाले जीवोंकेसाथ संयोग ही लिया जाय, तो ऐसा संयोग तो छटवें आदि ऊपरके गुणस्थानोंमें भी पाया जाता है। और दो वस्तुओंका एकरुप हो जाना भी इस मिश्रणका अर्थ नहीं हो सकता है? यदि मिश्रणका अर्थ दो वस्तुओंका एकरुप हो जाना ही माना जाय, तो जब भिन्न भिन्न सत्तावाले दो पदार्थ एकरुप होंगे, तब दोमेंसे किसी एकका अभाव हो जानेसे व्दित्वादिके निमित्तसे पैदा होनेवाली मिश्रता नहीं बन सकती है?

समाधान --- प्रथम विकल्पसंबन्धी दोष तो यहां पर लागू हो नहीं सकता, क्योंकि, यहां पर मिश्र शब्दका अर्थ दो पदार्थोंके संयोगरुप स्वीकार नहीं किया हैं। उसीतरह दूसरे विकल्पमें दिया गया दोष भी यहां पर लागू नहीं होता है, क्योंकि, यहां पर गुणकृत समानताकी अपेक्षा तिर्यंचोंका मनुष्यगतिकेजीवोंकेसाथ मिश्रभाव स्वीकार किया है। आगे इसीको स्पष्ट करते हैं ---

---

मापन्ना इति ततो न दोष:। स्यान्मतं, गतिनिरुपणायामियन्तो गुणा: अस्यां गतौ सन्ति न सन्तीति निरुपणाया१ (मु. निरुपणयैवमवसीयतेऽस्या:।) एव अवसीयते, अस्या: गत्या: अनया

गत्या हस गुणव्दारेण योगोऽस्ति नास्तीति, ततः पुनरिदं निरुपणमनर्थकमिति? न, तस्य दुर्मेधसामपि स्पष्टीकरणार्थत्वात्। 'प्रतिपाद्यस्य बुभुत्सितार्थविषयनिर्णयोत्पादनं वक्तृवचसः फलम्' इति न्यायात्। अथवा न तिरश्चां मिथ्यात्वादिर्मनुष्यादि-मिथ्यात्वादिभिः समानः, तिर्यङमनुष्यादिव्यतिरिक्तमिथ्यात्वादेरभावात्। नापि तिर्यगादीनामेकत्वम्, चतुर्गतेरभावप्रसङ्गात्। न चाभावः, मनुष्येभ्यो व्यतिरिक्त-तिरश्चामुपलम्भादिति पर्यायनयैकान्तावष्टम्भनबलेन केचिद् विप्रतिपन्नाः। न मिथ्यात्वादयः पर्यायाः जीवद्रव्यादिभिन्नाः, कोषादसेरिव तेषां तस्मात्पृथगनुपलम्भादस्येमे

तिर्यंचोंकी मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, और असंयतसम्यग्दृष्टि-रुप गुणोंकी अपेक्षा तो तीन गतिमें रहनेवाले जीवोंके साथ समानता है, इसलिये तीन गतिवाले जीवोंके साथ तिर्यंच जीव चौथे गुणस्थानतक मिश्र कहलाते हैं। और संयमासंयम गुणकी अपेक्षा तिर्यंचोंकी मनुष्योंके साथ समानता होनेसे तिर्यच मनुष्योंके साथ एकत्वको प्राप्त हुए है। इसलिये पांचवें गुणस्थानतक मनुष्योंके साथ तिर्यंचोंको मिश्र कहनेंमें पूर्वोक्त दोष नहीं आता है।

शंका --- गति-मार्गणाकी प्ररुपणा करने पर 'इस गतिमें इतने गुणस्थान होते हैं, और इतने नहीं' इसप्रकारके निरुपण करनेसे ही यह जाना जाता है कि इस गतिकी इस गतिके साथ गुणस्थानोंकी अपेक्षा समानता है, इसकी इसके साथ नहीं। इसलिये फिरसे इसका कथन करना निष्फल है?

समाधान --- नहीं, क्योंकि, अल्पबुध्दिवाले शिष्योंको भी विषयका स्पष्टीकरण हो जावे, इसलिये इस कथनका यहां पर निरुपण किया है, क्योंकि, शिष्यको जिज्ञासित-अर्थ संबन्धी निर्णय उत्पन्न करा देना ही वक्ताके वचनोंका फल है, ऐसा न्याय है।

अथवा, तिर्यंचोंके मिथ्यात्वादि भाव मनुष्यादि तीन गतिसंबन्धी जीवोंके मिथ्यात्वादि भावोंके समान नहीं हैं, तिर्यंच और मनुष्यादिकको छोडकर मिथ्यात्वादि भावोंका स्वतन्त्र सद्भाव नहीं पाया जाता है। इसलिये जब कि तिर्यंचादिकोंमे परस्पर भेद है, तो तदाश्रित भावोंमें भी भेद होना संभव है। यदि कहा जाय कि तिर्यचादिकोंमें परस्पर एकता अर्थात् अभेद है, सो भी कहना नहीं बन सकता है, क्योंकि, तिर्यंचादिकोंमें परस्पर अभेद माननेपर चारों गतियोंके अभावका प्रसंग आ

जायगा । परंतु चारों गतियोंका अभाव माना नहीं जा सकता क्योंकि, मनुष्योंसे अतिरिक्त तिर्यंचोंकी उपलब्धि होती है । इसप्रकार पर्यायार्थिकनयको ही एकान्तसे आश्रय करके कितने ही लोग विवादग्रस्त हैं। इसीप्रकार मिथ्यात्वादि पर्यायें जीवद्रव्यसे भिन्न नहीं हैं, क्योंकि, जिसप्रकार तरवार म्यानसे भिन्न

इति सम्बन्धानुपपत्तेश्च। ततस्तस्मात्तेषामभेदः। तथा च न गतिभेदो नापि गुणभेदः इति द्रव्यनयैकान्तावष्टम्भनबलेन केचिद्विप्रतिपन्नास्तदभिप्रायकदर्थनार्थं वास्य सूत्रस्यावतारः। नाभिप्रायव्दयं घटते, तथाप्रतिभासनात्। न च प्रमाणाननुसार्य- भिप्रायः साधुः, अव्यवस्थापत्तेः। न च जीवाव्दैते व्दैते वा प्रमाणमस्ति, कृत्स्नस्यैकत्वा-द्देशादेरिव सत्तातोऽप्यन्यतो भेदात्। न प्रमेयस्यापि सत्त्वम् अपेक्षितप्रमाणव्यापारस्य तस्य प्रमाणाभावे सत्त्वायोगात्। प्रमाणं वस्तुनो न कारकमतो न तव्दिनाशाव्दस्तु-विनाश इति चेन्न, प्रमाणाभावे वचनाभावतः सकलव्यवहारोच्छित्तिप्रसङात्। अस्तु

उपलब्ध होती है, उसप्रकार मिथ्यात्वादिककी जीवद्रव्यसे पृथक् उपलब्धि नहीं होती है। और यदि भिन्न मान ली जावें तो ये मिथ्यात्वादिक पर्यायें इस जीव-द्रव्यकी हैं, इसप्रकार संबन्ध नहीं बनता है। इसलिये इन मिथ्यात्वादिक पर्यायोंका जीव-द्रव्यसे अभेद हैं। इस प्रकार जब मिथ्यात्वादिक पर्यायोंका जीवसे भेद सिध्द नहीं होता है, तो गतियोंका भेद भी सिध्द नहीं हो सकता है और न गुणस्थानोंका भेद ही सिध्द होता है। इसप्रकार केवल द्रव्यार्थिक नयको ही एकान्तसे आश्रय करके कितने ही लोग विवादमें पडे हुए हैं। इसलिये इन दोनों एकान्तियोंके अभिप्रायके खण्डन करनेके लिये तिरिक्खा मिस्सा' इत्यादि प्रकृत सूत्रका अवतार हुआ है। उक्त दोनों प्रकारके एकान्तरुप अभिप्राय घटित नहीं होते हैं, क्योंकि, सर्वथा एकान्तरुपसे वस्तुस्वरुपकी प्रतीति नहीं होती है। और प्रमाणके प्रतिकूल अभिप्राय ठीक नहीं माना जा सकता, अन्यथा सब जगह अव्यवस्था प्राप्त हो जावेगी। तथा जीवाव्दैत (जीव और मनुष्यादि पर्यायके सर्वथा अभेद), या जीव-व्दैत, (जीव और मनुष्यादि पर्यायके सर्वथा भेद) के माननेमें कोई प्रमाण नहीं है। यदि जीव-अव्दैतवादको प्रमाण मानते हैं तो नरक तिर्यंच आदि सभी पर्यायोंको एकताकी आपत्ति आ जाती है। और यदि जीव-व्दैतवादको प्रमाण मानते हैं तो देशभेद आदिकी तरह सत्तासे वस्तुका भेद मान लेने पर

वस्तुका सत्तासे भी भेद सिध्द हो जाता है। इसप्रकार व्दैतवाद या अव्दैतवादमें प्रमाण नहीं मिलनेसे प्रमेयका भी सत्त्व सिध्द नहीं होता है, क्योंकि, प्रमाणके व्यापारकी अपेक्षा रखनेवाले प्रमेयका भी सत्त्व सिध्द नहीं होता है, क्योंकि, प्रमाणके व्यापारकी अपेक्षा रखनेवाले प्रमेयका प्रमाणकेअभावमें सद्भाव नहीं बन सकता है।

शंका --- प्रमाण वस्तुका कारक (उत्पादक) नहीं है, इसलिये प्रमाणके विनाशसे वस्तुका विनाश नहीं माना जा सकता है?

समाधान --- नहीं, क्योंकि, प्रमाणके अभाव होनेपर वचनकी प्रवृत्ति नहीं हो सकती हैं, और उसके विना संपूर्ण लोकव्यवहारके विनाशका प्रसंग आता है।

शंका --- यदि लोकव्यवहार विनाशको प्राप्त होता है, तो हो जाओ?

समाधान --- नहीं, क्योंकि, ऐसा मानने पर वस्तु-विषयक विधि-प्रतिषेधका भी अभाव प्राप्त हो जायगा।

चेन्न, वस्तुविषयविधिप्रतिषेधयोरप्यभावासञ्जनात्। अस्तु चेन्न, तथानुपलम्भात्। ततो विधिप्रतिषेधात्मकंवस्त्वित्यङ्गीकर्तव्यम् अन्यथोक्तदोषानुषङ्गात्। तत: सिध्दं गुणव्दारेण जीवानां सादृश्यं विशेषरुपेणासादृश्यमिति । गुणस्थानमार्गणासु जीवसमासान्वेषणार्थं वा ।

इदानौं मनुष्याणां गुणव्दारेण सादृश्यासादृश्यप्रतिपादनार्थमाह ---

मणुस्सा मिस्सा मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव संजदासंजदा त्ति ।।३१।।

आदितश्चतुर्षु गुणस्थानेषु ये मनुष्यास्ते मिथ्यात्वादिभिश्चतुर्भिर्गुणैस्त्रिगतिजीवै: समाना:, संयमासंयमेन तिर्यग्भि:।

तेण परं सुध्दा मणुस्सा ।।३२।।

शेषगुणानां मनुष्यगतिव्यतिरिक्तगतिष्वसभ्भवाच्छेषगुणा मनुष्येष्वेव सम्भवन्ति, उपरितनगुणैर्मनुष्या: न कैश्चित्समाना इति यावत्। देवनरकगत्यो:

शंका --- यह भी हो जाओ?

समाधान --- ऐसा भी नहीं है, क्योंकि, वस्तुका विधि-प्रतिषेधरुप व्यवहार देखा जाता है। इसलिये विधि-प्रतिषेधात्मक वस्तु स्वीकार कर लेना चाहिये । अन्यथा पूर्वमें कहे हुए संपूर्ण दोष

प्राप्त हो जावेंगे। इसलिये यह सिध्द हुआ कि गुणोंकी मुख्यतासे जीवोंके परस्पर समानता है, और विशेष (गुणभेद) की मुख्यतासे परस्पर भिन्नता है।

अथवा, गुणस्थानों और मार्गणओंमें जीवसमासोंके अन्वेषण करनेके लिये यह सूत्र रचा गया है।

अब मनुष्योंकि गुणस्थानोंके व्दारा समानता और असमानताके प्रतिपादन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं -

मिथ्यादृष्टियोंसे लेकर संयतासंयततकके मनुष्य मिश्र हैं ।।३१।।

प्रथम गुणस्थानसे लेकर चार गुणस्थानोंमें जितने मनुष्य हैं वे मिथ्यात्वादि चार गुणस्थानोंकी अपेक्षा तीन गतिके जीवोंके साथ समान हैं और संयमासंयमगुणस्थानकी अपेक्षा तिर्यंचोंके साथ समान हैं।

पांचवें गुणस्थानसे आगे शुध्द (केवल) मनुष्य हैं ।।३२।।

प्रारम्भके पांच गुणस्थानोंको छोडकर शेष गुणस्थान मनुष्यगतिके विना अन्य तीन गतियोंमें नहीं पाये जाते हैं, इसलिये शेष गुणस्थान मनुष्योंमें ही संभव हैं। अत: छटवें आदि ऊपरके गुणस्थानोंकी अपेक्षा मनुष्य अन्य तीन गतिके किन्हीं जीवोंके साथ समानता नहीं रखते हैं। यह इस सूत्रका तात्पर्य समझना चाहिये।

सादृश्यमसादृश्यं वा किमिति नोक्तमिति चेन्न, आभ्यामेव प्ररुपणाभ्यां मन्दमेधसामपि तदवगमोत्पत्तेरिति।

इन्द्रियमार्गणायां गुणस्थानान्वेषणार्थमुत्तरसूत्रमाह ---

इंदियाणुवादेण अत्थि एइंदिया बीइंदिया तीइंदिया चउरिंदिया पंचिंदिया अणिंदिया चेदि ।।३३।।

इन्दनादिन्द्रः आत्मा, तस्येन्द्रस्य लिङ्गमिन्द्रियम्। इन्द्रेण सृष्टमिति वा इन्द्रियम् १ (इन्दतीति इन्द्र आत्मा, तस्य ज्ञस्वभावस्य तदावरणक्षयोपशमे सति स्वयमर्थान् गृहीतुमसमर्थस्य यदर्थोपलब्धिनिमित्तं लिंग तदिन्द्रस्य लिंगमिन्द्रियमित्युच्यते। अथवा लीनमर्थ गमयतीति लिंगम्। आत्मन: सूक्ष्मस्यास्तित्वाधिगमे। लिंगमिन्द्रियम्। अथवा 'इन्द्र' इति नामकर्मोच्यते, तेन सृष्टमिन्द्रियमिति। स. सि. १, १४.) ॰ तद् व्दिविधम्, द्रव्येन्द्रियं २ (जातिनामकर्मोदयसहकारि

देहनामकर्मोदयजनितं निर्वृत्त्युपकरणरुपं देहचिन्हं द्रव्यन्द्रियम्। गो. जी., जी. प्र., टी १६५.) भावेन्द्रियं ३ (भाव: चित्परिणाम:, तदात्मकमिन्द्रियं भावेन्द्रियम्। गो. जी., जी. प्र., टी. १६५.) चेति। निर्वृत्त्युपकरणे द्रव्येन्द्रियम् ४ (त. सू. २, १७.) निर्वर्त्यत इति निर्वृत्ति:, कर्मणा या निर्वर्त्यते निष्पाद्यते सा निर्वृत्तिरित्यपदिश्यते ५ (मु. रित्युपदिश्यते । त. रा. वा. पृ. ९०.) ।

शंका --- देव और नरकगतिके जीवोंकी अन्य गतिके जीवोंके साथ समानता और असमानताका कथन क्यों नहीं किया?

समाधान --- अलग कथन करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि, तिर्यंच और मनुष्यसंबन्धी प्ररुपणाओंके व्दारा ही मन्दबुध्दि जनोंको भी देव और नारकियोंकी दूसरी गतिवाले जीवोंके साथ सदृशता और असदृशताका ज्ञान हो जाता है।

अब इन्द्रियमार्गणामें गुणस्थानोंके अन्वेषणके लिये आगेका सूत्र कहते हैं ---

इन्द्रियमार्गणाकी अपेक्षा एकेन्द्रिय, व्दीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय और अनिन्द्रिय जीव हैं ।।३३।।

इन्दन अर्थात ऐश्वर्यशाली होनेसे यहां इन्द्र शब्दका अर्थ आत्मा है, और उस इन्द्रके लिंग (चिन्ह) को इन्द्रिय कहते हैं। अथवा जो इन्द्र अर्थात् नामकर्मसे रची जावे उसे इन्द्रिय कहते हैं। वह इन्द्रिय दो प्रकारकी है- द्रव्येन्द्रिय और भावेन्द्रिय। निर्वृत्ति और उपकरणको द्रव्येन्द्रिय कहते हैं। जो निवृत्त होती है अर्थात् कर्मके व्दारा रची जाती है उसे निर्वृत्ति कहते हैं। बाह्य-निवृत्ति और आभ्यन्तर-निर्वृत्तिके भेदसे वह निर्वृत्ति दो प्रकारकी हैं। उनमें, प्रतिनियत चक्षु आदि इन्द्रियोंके आकाररुपसे परिणत हुए लोकप्रमाण अथवा उत्सेधांगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण विशुध्द आत्मप्रदेशोंकी रचनाको आभ्यन्तर निर्वृत्ति कहते हैं।

सा निर्वृत्तिर्व्दिविधा बाह्याभ्यन्तरभेदात्। तत्र लोकप्रमितानां विशुध्दानामात्मप्रदेशानां प्रतिनियतचक्षुरादीन्द्रियसंस्थानेनावस्थितानामुत्सेधाङ्गुलस्यासंख्येयभागप्रमितानां वा वृत्तिरभ्यन्तरा निर्वृत्ति: १ (उत्सेधांगुलासंख्येयभागप्रमितानां शुध्दानामात्मप्रदेशानां प्रतिनियतचक्षुरादीन्द्रियसंस्थानेनाव-स्थितानां वृत्तिरभ्यन्तरा निर्वृत्ति:। स. सि. २, १७, त. रा. वा. २. १७.)[६]

आह, चक्षुरादीनामिन्द्रियाणां क्षयोपशमो हि नाम स्पर्शनेन्द्रियस्येव किमु सर्वात्मप्रदेशेषु जायते, उत प्रतिनियतेष्विति? किं चातः, न सर्वात्मप्रदेशेषु, स्वसर्वावयवैः रुपाद्युपलब्धिप्रसङ्गात्। अस्तु चेन्न, तथानुपलम्भात्। न प्रतिनियतात्मावयवेषु वृत्तिः, २ (मु. वृत्तेः।) 'सिया ट्ठिया, सिया अट्ठिया, सिया ट्ठियाट्ठिया३ (वे. वे. सू. ५-७. स्थितास्थितवचनात् । x x तत्र सर्वकालं जीवाष्टमध्यप्रदेशाः निरपवादाः सर्वजीवानां स्थिता एव। केवलिनामपि अयोगिनां सिध्दानां च सर्वप्रदेशाः स्थिता एव। व्यायामदुःखपरिता-पोद्रेकपरिणतानां जीवानां यथोक्ताष्टमध्यप्रदेशवर्जितानां इतरे प्रदेशाः अस्थिता एव। शेषाणां प्राणिनां स्थिताश्चस्थिताश्चेति वचनात् । त. रा. वा. ५. ८. १४.) ' इति वेदनासूत्र-तोऽवगतभ्रमणेषु जीवप्रदेशेषु प्रचलत्सु सर्वजीवानामान्ध्यप्रसङ्गादिति नैष दोषः

शंका --- जिस प्रकार स्पर्शन-इन्द्रियका क्षयोपशम संपूर्ण आत्मप्रदेशोंमें उत्पन्न होता है, उसी प्रकार चक्षु आदि इन्द्रियोंका क्षयोपशम क्या संपूर्ण आत्मप्रदेशोंमे उत्पन्न होता है, या प्रतिनियत आत्मप्रदेशोंमें? आत्माके संपूर्ण प्रदेशोंमें क्षयोपशम होता है, यह तो माना नहीं जा सकता है, क्योंकि, ऐसा मानने पर आत्माके संपूर्ण अवयवोंसे रुपादिककी उपलब्धिका प्रसंग आ जायगा। यदि कहा जाय, कि संपूर्ण अवयवोंसे रुपादिककी उपलब्धि होती ही है, सो यह भी कहना ठीक नहीं है, क्योंकि, सर्वांगसे रुपादिका ज्ञान होता हुआ पाया नहीं जाता। इसलिये सर्वांगमें तो क्षयोपशम माना नहीं जा सकता है। और यदि आत्माके प्रतिनियत अवयवोंमें चक्षु आदि इन्द्रियोंकी वृत्ति मानी जाय, सो भी कहना नहीं बनता है, क्योंकि, ऐसा मान लेने पर 'आत्मप्रदेश चल भी हैं, अचल भी हैं और चलाचल भी हैं' इस प्रकार वेदनाप्राभृतके सूत्रसे आत्मप्रदेशोंका भ्रमण अवगत हो जाने पर, जीवप्रदेशोंकी भ्रमणरुप अवस्थामें संपूर्ण जीवोंको अन्धपनेका प्रसंग आ जायगा, अर्थात् उस समय चक्षु आदि इन्द्रियां रुपादिको ग्रहण नहीं कर सकेंगी?

समाधान --- यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, जीवके संपूर्ण प्रदेशोंमें क्षयोपशम की उत्पत्ति स्वीकार की है। परंतु ऐसा मान लेने पर भी, जीवके संपूर्ण प्रदेशोंके व्दारा रुपादिकी उपलब्धिका

प्रसंग भी नहीं आता है, क्योंकि, रुपादिके ग्रहण करनेमें उसके सहकारी कारणरुप बाह्य-निर्वृत्ति जीवके संपूर्ण प्रदेशोंमें नहीं पाई जाती है।

सर्वजीवावयवेषु क्षयोपशमस्योत्पत्त्यभ्युपगमात्। न सर्वावयवै: रुपाद्युपलब्धिरपि, तत्सहकारिकारणबाह्यनिर्वृत्तेरशेषजीवावयवव्यापित्वाभावात्। कर्मस्कन्धै: सहसर्वजीवावयवेषु भ्रमत्सु तत्समवेतशरीरस्यापि तव्दद्भ्रमो भवेदिति चेन्न, तद्भ्रमणावस्थायां। तत्समवायाभावात्। शरीरेण समवायाभावे मरणमाढौकत इति चेन्न, आयुष: क्षयस्य मरणहेतुत्वात्। पुन: कथं संघटत इति चेन्नानाभेदोपसंहृतजीवप्रेदशानां पुन: संघटनोपलम्भात् व्दयोर्मूर्तयो: संघटने विरोधाभावाच्च, तत्संघटनहेतु-कर्मोदयस्य कार्यवैचित्र्यादवगतवैचित्र्यस्य सत्त्वाच्च । द्रव्येन्द्रियप्रमितजीवप्रदेशानां न

विशेषार्थ --- यहाँ अभ्यन्तर निर्वृतिकी रचना दो प्रकारसे बतला आये हैं। प्रथम, लोकप्रमाण आत्मप्रदेशोंकी इन्द्रियाकार रचनाको अभ्यन्तर निर्वृत्ति कहा है। दूसरे, उत्सेधांगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण आत्मप्रदेशोंकी इन्द्रियाकार रचनाको अभ्यन्तर निर्वृत्ति कहा है। इस प्रकार अभ्यन्तर निर्वृत्तिकी रचना दो प्रकारसे बतलानेका यह अभिप्राय प्रतीत होता है कि स्पर्शन-इन्द्रिय सर्वांग होती है, इसलिये स्पर्शनेन्द्रियसंबन्धी अभ्यन्तर निर्वृत्ति भी सर्वांग होगी। इस अपेक्षासे लोकप्रमाण आत्मप्रदेशोंकी इन्द्रियाकार रचना अभ्यन्तर निवृत्ति कहलाती है, यह कथन बन जाता है। और शेष इंद्रियसंबंधी अभ्यन्तर निर्वृत्ति उत्सेधांगुलके असंख्यातवे भाग प्रमाण बन जाता है। अथवा, 'सर्वजीवावयवेषु क्षयोपशमस्योत्पत्त्यभ्युपगमात्' अर्थात् जीवके संपूर्ण अवयवोंमें क्षयोपशमकी उत्पत्ति स्वीकार की है, यहाँ कहे गये इस वचनके अनुसार प्रत्येक इन्द्रियावरण कर्मका क्षयोपशम सर्वांग होता है, इसलिये पांचो इन्द्रियोंकी अभ्यन्तर निर्वृत्ति सर्वांग होना संभव है। किंतु इतनी विशेषता समझ लेना चाहिये कि स्पर्शनेन्द्रियकी अभ्यन्तर निर्वृत्तिको छोडकर शेष इन्द्रियसंबन्धी अभ्यन्तर निर्वृत्ति उत्सेधांगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण आत्मप्रदेशोंमें ही व्यक्त होती है।

शंका --- कर्मस्कन्धोंके साथ जीवके संपूर्ण प्रदेशोंके भ्रमण करने पर, जीवप्रदेशोंसे समवायसंबन्धको प्राप्त शरीरका भी जीवप्रदेशोंके समान भ्रमण होना चाहिये?

समाधान --- ऐसा नहीं है, क्योंकि, जीवप्रदेशोंकी भ्रमणरुप अवस्थामें शरीरका उनसे समवायसंबन्ध नहीं रहता है।

शंका --- भ्रमणके समय शरीरके साथ जीवप्रदेशोंका समवायसंबन्ध नहीं मानने पर मरण प्राप्त हो जायगा?

समाधान --- नहीं, क्योंकि, आयु-कर्मके क्षयको मरणका कारण माना है।

शंका --- तो जीवप्रदेशोंका शरीरके साथ फिरसे समवायसंबन्ध कैसे बन जाता है?

समाधान --- इसमें भी कोई बाधा नहीं है, क्योंकि, जिन्होंने नाना अवस्थाओंका उपसंहार कर लिया है, ऐसे जीवोंके प्रदेशोंका शरीरके साथ फिरसे समवायसंबन्ध उपलब्ध होता हुआ देखा ही जाता है। तथा, दो मूर्त पदार्थोंके संबन्ध होनेमें कोई विरोध भी नहीं आता है। अथवा, जीवप्रदेश और संघटनके हेतुरुप कर्मोदयके कार्यकी विचित्रतासे यह

भ्रमणमिति किन्नेष्यत इति चेन्न, तद्भ्रमणमन्तरेणाशुभ्रज्जीवानां भ्रमद्भूम्या-दिदर्शनानुपपत्तेः इति। तेष्वात्मप्रदेशेषु इन्द्रियव्यपदेशभाक्षु यः प्रतिनियतसंस्थानो नामकर्मोदयापादितावस्थाविशेषः पुद्गलप्रचयः स बाह्या निर्वृत्तिः१ (पाठोऽयं त. रा. वा. २. १७. वा . ३-४ व्याख्यया समानः।)[६] मसूरिकाकारा अङ्गुलस्यासंख्येयभागप्रमिता चक्षुरिन्द्रियस्य बाह्या निर्वृत्तिः। यवनालिकाकारा अङ्गुलस्यासंख्येयभागप्रमिता श्रोत्रस्य बाह्या निर्वृत्तिः। अतिमुक्तकपुष्पसंस्थाना अङ्गुलस्यासंख्येयभागप्रमिता घ्राणनिर्वृत्तिः। अर्धचन्द्राकारा क्षुरप्राकारा वाङ्गुलस्य

सब होता है। और जिसके अनेक प्रकारके कार्य अनुभवमें आते हैं ऐसे कर्मका सत्त्व पाया ही जाता है।

शंका --- द्रव्येन्द्रिय-प्रमाण जीवप्रदेशोंका भ्रमण नहीं होता, ऐसा क्यों नहीं मान लेते हो?

समाधान --- नहीं, क्योंकि, यदि द्रव्येन्द्रिय-प्रमाण जीवप्रदेशोंका भ्रमण नहीं माना जावे, तो अत्यन्त द्रुतगतिसे भ्रमण करते हुए जीवोंको भ्रमण करती हुई पृथिवी आदिका ज्ञान नहीं हो सकता है। इसलिये आत्मप्रदेशोंके भ्रमण करते समय द्रव्येन्द्रिय प्रमाण आत्मप्रदेशोंका भी भ्रमण स्वीकार कर लेना चाहिये।

इस तरह इन्द्रिय-व्यपदेशको प्राप्त होनेवाले उन आत्मप्रदेशोंमें, जो प्रतिनियत आकारवाला और नामकर्मके उदयसे अवस्था-विशेषको प्राप्त पुद्‌गलप्रचय है उसे बाह्य-निवृत्ति कहते हैं। मसूरके समान आकारवाली और घनांगुलके असंख्यातवें भाग-प्रमाण चक्षु इन्द्रियकी बाह्य-निर्वृत्ति होती है। यवकी नालीके समान आकारवाली और घनांगुलके असंख्यातवें भाग-प्रमाण श्रोत्र-इन्द्रियकी बाह्य-निवृत्ति होती है ॅ कदम्बके फूलके समान आकारवाली और घनांगुलके असंख्यातवें भाग-प्रमाण घ्राण-इन्द्रियकी बाह्य-निर्वृत्ति होती है। अर्ध-चन्द्र अथवा खुरपाके समान आकारवाली और घनांगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण रसना इन्द्रियकी बाह्य-निवृत्ति होती है। स्पर्शन-इन्द्रियकी बाह्य-निर्वृत्ति अनियत आकारवाली होती है। वह जघन्य-प्रमाणकी अपेक्षा घनांगुलके असंख्यातवें भाग-प्रमाण सूक्ष्मनिगोदिया लब्ध्यपर्याप्तक जीवके (तीन मोडेसे-ऋजुगतिसे उत्पन्न होनेके तृतीय समयवर्ती) शरीरमें पाई जाती है, और उत्कृष्ट प्रमाणकी अपेक्षा संख्यात घनांगुल-प्रमाण महामत्स्य आदि त्रस जीवोंके शरीरमें पाई जाती है। चक्षु-इन्द्रियके अवगाहनारुप प्रदेश सबसे कम हैं। उनसे संख्यातगुणे श्रोत्र इंद्रियके प्रदेश हैं। उनसे अधिक घ्राण-इंद्रियके प्रदेश हैं। उनसे असंख्यात गुणे जिव्हा-इन्द्रियमें प्रदेश हैं। और उनसे संख्यातगुणे स्पर्शन-इन्द्रियमें प्रदेश हैं।

विशेषार्थ --- यहाँ इन्द्रियोंकी अवगाहना बतला कर जो चक्षु आदि इन्द्रियोंके प्रदेशोंका प्रमाण बतलाया गया है, वह इन्द्रियोंकी अवगाहनाके तारतम्यका ही बोधक जानना चाहिये। अर्थात् चक्षु इन्द्रिय अपनी अवगाहनासे जितने आकाश-प्रदेशोंकी रोकती है, उससे

संख्येयभागप्रमिता रसननिर्वृतीः। स्पर्शनेन्द्रियनिर्वृत्तिरनियतसंस्थाना। सा जघन्येन अङगुलस्यासंख्येयभागप्रमिता सूक्ष्मशरीरेषु, उत्कर्षेण संख्येयघनाङगुलप्रमिता महामत्स्यादित्रसजीवेषु१ (सुहुमणिगोदअप ज्जत्तयस्स जादस्स तदियसमयन्हि। अंगुलअसंखभागं जहण्णमुक्कस्सयं मच्छे।। गो. जी. १७३.) सर्वतः स्तोकाश्चक्षुषः प्रदेशाः, श्रोत्रेन्द्रियप्रदेशाः संख्येयगुणाः, घ्राणेन्द्रियप्रदेशा विशेषाधिकाः, जिह्वायामसंख्येयगुणाः, स्पर्शने संख्येयगुणाः२ ('स्पशनेऽनंतगुणाः' इति पाठः त. रा. वा. २. १९. ५.) उक्तं च ---

जव-णालिया मसूरी चंदध्दइमुत्त-फुल्ल-तुल्लाइं।

इंदिय-संठाणाइं पस्सं पुण णेय-संठाणं ३ (प्रा. पं. १, ६६। चक्खू सोदं घाणं

जिब्भायारं मसूरजवणाली। अतिमुत्तखुरप्पसमं फासं तू अणेयसंठाणं।। गो. जी. १७१.) ।।१३४।।

उपक्रियतेऽनेनेत्युपकरणम्, येन निर्वृत्तेरुपकार: क्रियते तदुपकरणम्। तद् व्दिविधं बाह्याभ्यन्तरभेदात्। तत्राभ्यन्तरं कृष्णशुक्लमण्डलम्। बाह्यमक्षिपत्रपक्ष्म-व्दयादि। एवं शेषेष्विन्द्रियेषु४ (मु. शेषेन्द्रियेषु।) ज्ञेयम्५ (पाठोऽयं त. रा. वा. २.१७. वा. ५-७ व्याख्यया समान:। ६ त. सू. २.१८.)ं लब्ध्युपयोगौ भावेन्द्रियम्६ (त. सू. २. १८.)। इन्द्रियनिर्वृत्तिहेतु:

संख्यातगुणे आकाश-प्रदेशोंको व्याप्त कर श्रोत्रेन्द्रिय रहती है। उससे विशेष अधिक आकाश-प्रदेशोंको घ्राण-इन्द्रिय व्याप्त करती है। उससे असंख्यातगुणे आकाशप्रदेशोंको व्याप्त कर जिह्वा-इन्द्रिय रहती है और उससे संख्यातगुणे आकाश-प्रदेशोंको व्याप्त कर स्पर्शन इन्द्रिय रहती है। गोमट्टसार जीवकाण्डकी 'अंगुलअसंखभागं' इत्यादि गाथासे इसी कथनकी पुष्टि होती है। अवगाहनाके समान इन्द्रियाकार आत्मप्रदेशोंकी रचनामें भी यह क्रम लागू हो सकता है । परंतु राजवार्तिकमें 'स्पर्शनरसनघ्राणचक्षु:श्रोत्रणि' इस सूत्रकी व्याख्या करते हुए रसना-इन्द्रियसे स्पर्शन-इन्द्रियके प्रदेश अनन्तगुणे अधिक बतलाये हैं। यह कथन इन्द्रियोंकी अवगाहना और इन्द्रियाकार आत्मप्रदेशोंकी रचनामें किसी भी प्रकारसे घटित नहीं होता है, क्योंकि एक जीवके अवगाहनरुप क्षेत्र और आत्मप्रदेश अनन्तप्रमाण या अनन्तगुणे संभव ही नहीं हो सकतें संभव है वहां पर बाह्यनिर्वृत्तिके प्रदेशोंकी अपेक्षासे उक्त कथन किया गया हो। कहा भी है ---

श्रोत्र-इन्द्रियका आकार यवकी नालीके समान है, चक्षु-इन्द्रियका मसूरके समान, रसना-इन्द्रियका आधे चन्द्रमाके समान, घ्राण-इन्द्रियका कदम्बके फूलके समान आकार है और स्पर्शन-इन्द्रिय अनेक आकारवाली है ।।१३४।।

जिसके व्दारा उपकार किया जाता है, अर्थात् जो निर्वृत्तिका उपकार करता है उसे उपकरण कहते हैं। वह बाह्य-उपकरण और अभ्यन्तर-उपकरणके भेदसे दो प्रकारका है। उनमेंसे कृष्ण और शुक्ल मण्डल नेत्र-इन्द्रियका अभ्यन्तर-उपकरण है, और दोनों पलकें तथा दोनों

क्षयोपशमविशेषो लब्धि: १ (अर्थग्रहणशक्तिलब्धि: लघी. स्व. वि. १.५.। गो. जी., जी. प्र., टी. १६५. लम्भनं लब्धि:। क: पुनरसौ? ज्ञानावरणक्षयोपशमविशेष:। स. सि. २.१८. इन्द्रियनिर्वृत्तिहेतु: क्षयोपशमविशेषो लब्धि:। त. रा. वा. २. १८. १.। स्वार्थसंवद्योग्यतैव च लब्धि:। त. श्लो. वा. २.१८. आवरणक्षयोपशमप्राप्तिरुपा अर्थग्रहणशक्तिर्लब्धि:। स्या. रत्ना. पृ. ३४४.) ६ यत्सन्निधानादात्मा द्रव्येन्द्रियनिर्वृत्ति प्रति व्याप्रियते स ज्ञानावरणक्षयोपशमविशेषो लब्धिरिति विज्ञायते। तदुक्तनिमित्तं प्रतीत्योत्पद्यमान: आत्मन: परिणाम: उपयोग२ (अर्थग्रहणव्यापार उपयोग:। गो. जी. जी. प्र., टी. १६५. उपयोग: पुन: अर्थग्रहणव्यापार:। लघी. स्व. वि. १.५. यत्सन्निधानादात्मा द्रव्येन्द्रियनिर्वृत्ति प्रति व्याप्रियते तन्निमित्त आत्मन: परिणाम उपयोग:। स. सि. २. १८.। त. रा. वा. २.१८.२. उपयोग: प्रणिधानम्। त. भा. २.१९. उपयोगस्तु रुपादिग्रहणव्यापार:। स्या. रत्ना. पृ. ३४४.) इत्यपदिश्यते। तदेतदुभयं भावेन्द्रियम्। उपयोगस्य३ (उपयोगस्य फलत्वादिन्द्रियव्यपदेशानुपपत्तिरिति चेन्न, कारणधर्मस्य कार्यानुवृत्ते:। त. रा. व. २.१८.३.) तत्फलत्वादिन्द्रियव्यपदेशानुपपत्तिरिति चेन्न, कारणधर्मस्य कार्यानुवृत्ते:। कार्य हि लोके कारणमनुवर्तमानं दृष्टं, यथा घटाकारपरिणतं विज्ञानं घट इति। तथेन्द्रियनिर्वृत्त

नेत्ररोम (बरोनी) आदि उसके बाह्य-उपकरण हैं। इसी प्रकार शेष इन्द्रियोंमें जानना चाहिये।

लब्धि और उपयोगको भावेन्द्रिय कहते हैं। इन्द्रियकी निर्वृत्तिका कारणभूत जो क्षयोपशम-विशेष है उसे लब्धि कहते हैं। अर्थात् जिसके सन्निधानसे आत्मा द्रव्येन्द्रियकी रचनामें व्यापार करता है, ऐसे ज्ञानवरण कर्मके क्षयोपशम-विशेषको लब्धि कहते हैं। और उस पूर्वोक्त निमित्तके आलम्बनसे उत्पन्न होनेवाले आत्माके परिणामको उपयोग कहते हैं। इसप्रकार लब्धि और उपयोग ये दोनों भावेन्द्रियां हैं।

शंका --- उपयोग इन्द्रियोंका फल है, इसलिये उपयोगको इन्द्रिय संज्ञा देना उचित नहीं है?

समाधान --- नहीं, क्योंकि, कारणमें रहनेवाले धर्मकी कार्यमें अनुवृत्ति होती है। अर्थात् कार्य लोकमें कारणका अनुकरण करता हुआ देखा जाता है। जैसे, घटके आकारसे परिणत हुए ज्ञानको घट कहा जाता है, उसी प्रकार इन्द्रियोंसे उत्पन्न हुए उपयोगको भी इन्द्रिय संज्ञा दी गई है।

इन्द्र (आत्मा) के लिंगको इन्द्रिय कहते हैं। या जो इन्द्र अर्थात् नामकर्मसे रची गई है उसे इन्द्रिय कहते हैं। इस प्रकार जो इन्द्रिय शब्दका अर्थ किया जाता है, वह क्षयोपशममें प्रधानतासे पाया जाता है, इसलिये उपयोगको इन्द्रिय संज्ञा देना उचित है।

उक्त प्रकारकी इन्द्रियकी अपेक्षा जो अनुवाद, अर्थात् आगमानुकूल कथन किया जाता है उसे इन्द्रियानुवाद कहते हैं। उसकी अपेक्षा एकेन्द्रिय जीव हैं। जिनके एक ही इन्द्रिय पाई

उपयोगोऽपि इन्द्रियमित्यपदिश्यते १ (सन्दर्भोयं त. रा. वा. २.१८. वा. १-३. व्याख्यया समानः।)[६] इन्द्रस्य लिङ्गमिन्द्रेण सृष्टमिति वा य इन्द्रिय-शब्दार्थः स क्षयोपशमे प्राधान्येन विद्यत इति तस्येन्द्रियव्यपदेशो न्याय्य इति। तेन इन्द्रियेण अनुवादः इन्द्रियानुवादः, तेन सन्ति एकेन्द्रियाः। एकमिन्द्रियं येषां त एकेन्द्रियाः। किं तदेकमिन्द्रियम? स्पर्शनम्। वीर्यान्तरायस्पर्शनेन्द्रियावरणक्षयोपशमा-ङ्गोपाङ्गनामलाभावष्टम्भात्स्पृशत्यनेनेति स्पर्शनं २ (स. सि. २.१९. त. रा. वा. २.१९.) करणकारके। इन्द्रियस्य स्वातन्त्र्य-विवक्षायां कर्तृत्वं च भवति। यथा पूर्वोक्तहेतुसन्निधाने सति स्पृशतीति स्पर्शनम्। कोऽस्य विषयः? स्पर्शः[६] कोऽस्यार्थ ? उच्यते, यदा ३ ('नैवासतो जन्म सतो न नाशो' बृ. स्व. स्तो. २४. नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः। भग. भी. २. १६.) वस्तु प्राधान्येन विवक्षितं तदा

जाती है उन्हें एकेन्द्रिय जीव कहते हैं।

शंका --- वह एक इन्द्रिय कौनसी है?

समाधान --- वह एक इन्द्रिय स्पर्शन समझना चाहिये।

वीर्यान्तराय और स्पर्शनेन्द्रियावरण कर्मके क्षयोपशमसे तथा अंगोपांग नामकर्मके उदयरुप आलम्बनसे जिसके व्दारा स्पर्श किया जाता है उसे स्पर्शन इन्द्रिय कहते हैं। यह लक्षण करण-कारककी अपेक्षामें (परतन्त्र विवक्षामें) बनता है। और इन्द्रियकी स्वातन्त्र्यविवक्षामें कर्तृ-साधन होता है। जैसे, पूर्वोक्त साधनोंके रहने पर जो स्पर्श करता है उसे स्पर्शन-इन्द्रिय कहते हैं।

शंका --- स्पर्शन-इन्द्रियका विषय क्या है?

समाधान --- स्पर्शन इन्द्रियका विषय स्पर्श है।

शंका --- स्पर्शका क्या अर्थ हैं ? अर्थात् स्पर्शसे किसका ग्रहण करना चाहिये?

समाधान --- जिस समय द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षा प्रधानतासे वस्तु ही विवक्षित होती है, उस समय इन्द्रियके व्दारा वस्तुका ही ग्रहण होता हैं, क्योंकि, वस्तुको छोडकर स्पर्शादिक धर्म पाये नहीं जाते हैं। इसलिये इस विवक्षामें जो स्पर्श किया जाता हैं उसे स्पर्श कहते हैं, और वह स्पर्श वस्तुरुप ही पडता है। तथा जिस समय पर्यायार्थिकनयकी प्रधानतासे पर्याय विवक्षित होती हैं, उस समय पर्यायका द्रव्यसे भेद होनेके कारण उदासीनरुपसे अवस्थित भावका कथन किया जाता हैं। इसलिये स्पर्शमें भावसाधन भी बन जाता है। जैसे, स्पर्शना ही स्पर्श है।

शंका --- यदि ऐसा है, तो सूक्ष्म परमाणु आदिमें स्पर्श व्यवहार नहीं बन सकता है, क्योंकि, उसमें स्पर्शनरुप क्रियाका अभाव है?

इन्द्रियेण वस्त्वेव विषयीकृतं भवेद्, वस्तुव्यतिरिक्तस्पर्शाद्यभावात्। एतस्यां विवक्षायां स्पृश्यत इति स्पर्शो वस्तु। यदा तु पर्यायः प्राधान्येन विवक्षितस्तदा तस्य ततो भेदोपपत्तेरौदासीन्यावस्थितभावकथनाद्भावसाधनत्वमप्यविरुध्दम्, यथा स्पर्शनं स्पर्श इति । यद्येवम्, सूक्ष्मेषु परमाण्वावदिषु स्पर्शव्यवहारो न प्राप्नोति, तत्र तदभावात्? नैष दोषः, सूक्ष्मेष्वपि परमाण्वादिष्वस्ति स्पर्शः, स्थूलेषु तत्कार्येषु तद्दर्शनान्यथानुपपत्तेः । नह्यत्यन्तासतां प्रादुर्भावोऽस्तिअतिप्रसङ्गात्। किन्तु इन्द्रियग्रहणयोग्या न भवन्ति १ (प्रबन्धोऽयं त. रा. वा. २. २०. १. व्याख्याया समानः।) ९ ग्रहणायोग्यानां कथं स व्यपदेश इति चेन्न तस्य सर्वदा अयोग्यत्वाभावात्। परमाणुगतः सर्वदा न ग्रहणयोग्यश्चेन्न, तस्यैव स्थूलकार्याकारेण परिणतौ योग्यत्वो

समाधान --- यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, सूक्ष्म परमाणु आदिमें भी स्पर्श हैं, अन्यथा, परमाणुओंके कार्यरुप स्थूल पदार्थोंमें स्पर्शकी उपलब्धि नहीं हो सकती थी। किंतु स्थूल पदार्थोंमें स्पर्श पाया जाता है, इसलिये सूक्ष्म परमाणुओंमें भी स्पर्शकी सिध्दि हो जाती है, क्योंकि, न्यायका यह सिध्दान्त है, कि जो अत्यंत (सर्वथा) असत् होते हैं उनकी उत्पत्ति नहीं होती है। यदि सर्वथा असत्की उत्पत्ति मानी जावे तो अतिप्रसंग हो जायगा। (अर्थात् बांझके पुत्र, आकाशके फूल आदि अविद्यमान बातोंका भी प्रादुर्भाव मानना पडेगा) इसलिये यह समझना चाहिये कि

परमाणुओंमें स्पर्शादिक पाये जो अवश्य जाते हैं, किंतु तो इन्द्रियोंके व्दारा ग्रहण करने योग्य नहीं होते हैं।

शंका --- जब कि परमाणुओंमें रहनेवाला स्पर्श इन्द्रियोंके व्दारा ग्रहण नहीं किया जा सकता है, तो फिर उसे स्पर्श संज्ञा कैसे दी जा सकती है?

समाधान --- नहीं, क्योंकि, परमाणुगत स्पर्शके इन्द्रियोंके व्दारा ग्रहण करनेकी अयोग्यताका सदैव अभाव नहीं है।

शंका --- परमाणुमें रहनेवाला स्पर्श तो इन्द्रियोंद्वारा कभी भी ग्रहण करने योग्य नहीं है?

समाधान --- नहीं, क्योंकि, जब परमाणु स्थूल कार्यरुपसे परिणत होते हैं, तब तद्‌गत धर्मोंकी इन्द्रियोंद्वारा ग्रहण करनेकी योग्यता पाई जाती है'

शंका --- वे एकेन्द्रिय जीव कौन कौनसे हैं?

समाधान --- पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति, ये पांच एकेन्द्रिय जीव हैं।

शंका --- इन पांचोंके एक स्पर्शन इन्द्रिय ही होती है, शेष इन्द्रियां नहीं होतीं, यह कैसे जाना?

पलम्भात्। के त एकेन्द्रिया:? पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतय:। एतेषां स्पर्शनमेकमेवेन्द्रियमस्ति न शेषाणीति कथमवगम्यत इति चेन्न, स्पर्शनेन्द्रियवन्त एत इति प्रतिपादकार्षोपलम्भात्। क्व तत्सूत्रमिति चेत् कथ्यते ---

जाणदि पस्सदि भुंजदि सेवदि पासिंदिएण एक्केण ।

कुणदि य तस्सामित्तं थावरु एइंदियो तेण १ (प्रा. पं. १. ६९.)'१३५'

'वनस्पत्यन्तानामेकम्२ (त. सू. २. २२.)' इति तत्त्वार्थसूत्राव्दा। अस्यार्थ:- ३ (पाठोऽयं त. रा. वा. २.२२, वा. १-५ व्याख्यया समान:।) अयमन्तशब्दोऽने कार्थवाचक: - क्वचिदवयवे, यथा वस्त्रान्तो वसनान्त इति। क्वचित्सामीप्ये, यथा उदकान्तं गत, उदकसमीपं गत इति। क्वचिदवसाने वर्तते, यथा संसारान्तं गत:, संसारावसानं गत इति। तत्रेह विवक्षातोऽवसानार्थो वेदितव्य:, वनस्पत्यन्तानां वनस्पत्यवसानानामिति। सामीप्यार्थ: किन्न गृह्यते? न, वनस्पत्यन्तानां वनस्पति-समीपानामित्यर्थे गृह्यमाणे वायुकायानां त्रसकायानां च सम्प्रत्यय: प्रसज्येत 'पृथि -

---

समाधान --- नहीं, क्योंकि, पृथिवी आदि एकेन्द्रिय जीव एक स्पर्शन-इन्द्रियवाले होते हैं, इस प्रकार कथन करनेवाला आर्ष-वचन पाया जाता है।

शंका --- यह आर्ष-वचन कहां पाया जाता है?

समाधान --- वह आर्ष-वचन यहां कहा जाता है --

क्योंकि, स्थावर जीव एक स्पर्शन इन्द्रियके व्दारा ही जानता है, देखता है, भोगता है, सेवन करता है और उसका स्वामीपना करता है, इसलिये उसे एकेन्द्रिय स्थावर जीव कहा हैं ।।१३५।।

अथवा, 'वनस्पत्यन्तानामेकम्' तत्वार्थसूत्रके इस वचनसे जाना जाता है कि उनके एक स्पर्शन इन्द्रिय ही होती है। अब इस सूत्रका अर्थ करते हैं, अन्त शब्द अनेक अर्थोंका वाचक है। कहीं पर अवयवरुप अर्थमें आता है, जैसे 'वस्त्रान्त:' अर्थात् वस्त्रका अवयव। कहीं पर समीपताके अर्थमें आता है, जैसे 'उदकान्तं गत:' अर्थात् जलके समीप गया। कहीं पर अवसानरुप अर्थमें आता है, जैसे 'संसारान्तं गत:' अर्थात् प्राप्त हुआ। उनमेंसे यहां पर विवक्षासे अन्त शब्दका अवसानरुप अर्थ जानना चाहिये -- वनस्पत्यन्त जीवोंके अर्थात् वनस्पतिपर्यन्त जीवोंकेएक स्पर्शन इन्द्रिय होती है।

शंका --- 'वनस्पत्यन्तानामेकम्' इसमें आये हुए अन्त पदका ' वनस्पतिके समीपवर्ती जीवोंकेएक स्पर्शन-इन्द्रिय होती है' इस प्रकार सामीप्य-वाचक अर्थ क्यों नहीं लेते?

समाधान --- यदि 'वनस्पत्यन्तानामेकम्' इस सूत्रमें आये हुए अन्त शब्दका समीप

व्यप्तेजोवायुवनस्पतित्रसा:' इत्यत्र तयोरेव सामीप्यदर्शनात्। अयमन्तशब्द: सम्बन्धिशब्दत्वात् कांश्चित्यपूर्वानपेक्ष्य वर्तते ततोऽर्थादादिसम्प्रत्ययो भवति तस्मादयमर्थोऽवगम्यते पृथिव्यादीनां वनस्पत्यन्तानामेकमिन्द्रियमिति। एवमपि पृथिव्यादीनां वनस्पत्यन्तानां स्पर्शनादिष्वन्यतममेकमिन्द्रियं प्राप्नोत्यविशेषादिति चेन्नैष दोष:, अयमेकशब्द: प्राथम्यवचन:१ (मु. वचनम्।) 'स्पर्शनरसनघ्राणचक्षु:श्रोत्राणि २ (त. सू. २.१९.) ' इत्यत्रतनप्राथम्यमाश्रित इति। वीर्यान्तरायस्पर्शनेन्द्रियावरणक्षयोपशमे सति शेषेन्द्रियसर्वघातिस्पर्धकोदये चैकेन्द्रियजातिनामकर्मोदयवशवर्तितायां च सत्यां स्पर्शनमेकमिन्द्रियमाविर्भवति।

व्दे इन्द्रिये येषां ते व्दीन्द्रिया:। केते? शंखशुक्तिकृम्यादय:। उक्तं च ---

कुक्खिकिमि-सिंपि-संखा गंडूलारिट्ठ-अक्ख-खुल्ला य।

तह य वराडय जीवा णेया बीइंदिया एदे ३ (प्रा. पं., १, ७०. पाठभेद: उदरान्तर्तिनो हर्षा (अर्शो) मूलमपानकंडूकरा: स्त्रीयोन्यन्तर्गता)'१३६'

अर्थ लिया जाय तो उससे वायुकायिक और त्रसकायिकका ही ज्ञान होगा, क्योंकि, 'पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतित्रसा:' इस वचनमें वायुकायिक और त्रसकायिक ही वनस्पतिके समीप दिखाई देते हैं। यह अन्त शब्द संबन्धी शब्द होनेसे अपनेसे पूर्ववर्ती कितने ही शब्दोंकी अपेक्षा करके प्रवृत्ति करता है, और इससे अर्थवश आदिका ज्ञान हो जाता है। उससे यह अर्थ मालूम पडता है कि पृथिवीकायिकसे लेकर वनस्पति पर्यन्त जीवोंके एक स्पर्शन इन्द्रिय ही होती है।

शंका --- ऐसा मान लेने पर पृथिवीसे लेकर वनस्पति पर्यन्त जीवोंके स्पर्शन आदि पांच इन्द्रियोंमेंसे कोई एक इन्द्रिय प्राप्त होती है, क्योंकि, 'वनस्पत्यान्तानामेकम्' इस सूत्रमें आया हुआ एक पद स्पर्शन-इन्द्रियका बोधक तो है नहीं, वह तो सामान्यसे संख्यावाची है, इसलिये पांच इन्द्रियोंमेंसे किसी एक इन्द्रियका ग्रहण किया जा सकता है?

समाधान --- यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, यह एक शब्द प्राथम्यवाची है, इसलिये उससे 'स्पर्शनरसनघ्राणचक्षु:श्रोत्राणि' इस सूत्रमें आई हुई सबसे प्रथम स्पर्शन-इन्द्रियका ही ग्रहण होता है।

वीर्यान्तराय और स्पर्शनेन्द्रियावरण कर्मके क्षयोपशम होनेपर, रसना आदि शेष इन्द्रियावरणके सर्वघाती स्पर्ध्दकोंके उदय होनेपर तथा एकेन्द्रियजाति नामकर्मके उदयकी वशवर्तिताके होनेपर स्पर्शन एक इन्द्रिय उत्पन्न होती है।

जिनके दो इन्द्रियां होती हैं उन्हें व्दीन्द्रिय जीव कहते हैं।

शंका --- वे व्दीन्द्रिय जीव कौन कौन हैं?

समाधान --- शंख, शुक्ति और कृमि आदिक व्दीन्द्रिय जीव हैं । कहा भी है ---

---

के ते व्दे इन्द्रिय इति चेत्? स्पर्शनरसने। स्पर्शनमुक्तलक्षणम्। भेदविवक्षायां वीर्यान्तरायरसनेन्द्रियावरणक्षयोपशमाङ्गोपाङ्गनामलाभावष्टम्भाद्रसयत्यनेनेति रसनं करणकारके। इन्द्रियाणां स्वातन्त्र्यविवक्षायां पूर्वोक्तहेतुसन्निधाने सति रसयतीति रसनं कर्तृकारके भवति। कोऽस्य विषय:? रस:। कोऽस्यार्थ:। यदा वस्तु प्राधान्येन विवक्षितं तदा वस्तुव्यतिरिक्तपर्यायाभावाव्दस्त्वेव रस:। एतस्यां विवक्षायां

कुक्षि-कृमि अर्थात् पेटके कीडे, सीप, शंख, गण्डोला अर्थात् उदरमें उत्पन्न होनेवाली बडी कृमि, अरिष्ट नामक एक जीवविशेष, अक्ष अर्थात् चन्दनक नामका जलचर जीवविशेष, क्षुल्लक अर्थात् छोटा शंख और कौडी आदि व्दीन्द्रिय जीव हैं ।।१३६।।

शंका --- वे दो इन्द्रियां कौनसी हैं?

समाधान --- स्पर्शन और रसना। उनमेंसे स्पर्शनका स्वरुप कह आये हैं। अब रसना-इन्द्रियका स्वरुप कहते हैं ---

भेद-विवक्षाकी प्रधानता अर्थात् करणकारककी विवक्षा होनेपर, वीर्यान्तराय और रसनेन्द्रियावरणकर्मके क्षयोपशमसे तथा आंगोपांग नामकर्मके उदयके अवलम्बनसे जिसके व्दारा स्वादका ग्रहण होता है उसे रसना-इन्द्रिय कहते हैं। तथा इन्द्रियोंकी स्वातन्त्र्य -विवक्षा अर्थात् कर्तृ-कारककी विवक्षामें पूर्वोक्त साधनोंके मिलनेपर जो अस्वाद ग्रहण करती है उसे रसना-इन्द्रिय कहते हैं ।

शंका --- रसना इन्द्रियका विषय क्या है।

समाधान --- इस इन्द्रियका विषय रस है।

शंका --- रस शब्दका क्या अर्थ है?

वा जीवा: कुक्षिकृमय:। गण्डोलका उदरान्तर्बृहत्कृमय:। जलचरजीवविशेषा: चन्दनका:, ते तु समयभाषयाऽक्षत्वेन प्रतीता:। वराटक: कपर्दक:, कौंडीति भाषायाम्। (ग्रन्थान्तरेषु निम्नांकितनामानो जीवा अपि व्दीन्द्रियत्वेन प्रसिध्दा:।) संख-कवड्डय-गंडोल-जलोय-चंदणग-अलस-लहगाई। मेहर-किमि-पूयरगा। बेइंदिय माइवाहाई। जलोय-जलौकस:। अलसा भूनागा:, येऽश्लेषास्थे भानौ जलदवृष्टि सत्यां समुत्पद्यन्ते। लहको जीवविशेषो विषयप्रसिध्द:

(उषितान्नोत्पन्नजीवः, देशीशब्दोऽयं) मेहरकः काष्ठकीटविशेषः। पूयरगा-पूतरा जलान्तर्वर्तिनो रक्तवर्णाः कृष्णमुखाः जीवाः । माइवाही-मातृवाहिका गुर्जरदेशप्रसिध्दा चुडेलीति आदिग्रहणा-दीलिकादयोऽनुक्ता अपि व्दीन्द्रियाः ग्राह्याः[६] जी. वि. प्र. पृ. १०. किमिणो सोमंगला चेव अलसा माइवाहया। वासीमुहा य सिप्पिया संख संखणगा तहा।। घल्लोयाणुल्लया चेव तहेव य वराडगा। जलूगा चेव चन्दणा य तहेव य।। उत्त. २६. १२९-१३०. से किं तं बेइंदिया? बेइंदिया अणेगविहा पन्नता। तं जहा, पुलाकिमिया, कुच्छिकिमिया, गंडूयलगा, गोलोमा, णउरा, सोमंगलगा, वंसीमुहा, सूइमुहा गोजलोया, जलोया, जलाउया, संखा, संखणगा, घुल्ला, खुल्ला, गुलया, खधा, वराडा, सोत्तिया, कलुयावासा, एगओवत्ता, दुहओवत्ता, नंदियावत्ता, संबुक्का, माइबाहा, सिप्पिसंपुडा, चंदणा, समुद्दलिक्खा, जे यावन्ने तहप्पगारा। प्रज्ञा. १. ४४,

---

कर्मसाधनत्वं रसस्य, यथा रस्यत इति रसः। यदा तु पर्यायः प्राधान्येन विवक्षितस्तदा भेदोपपत्तेः औदासीन्यावस्थितभावकथनाद्भावसाधनत्वं रसस्य, रसनं रस इति। न सूक्ष्मेषु परमाण्वादिषु रसाभावः, उक्तोत्तरत्वात्। कुत एतयोरुत्पत्तिरिति चेत्, वीर्यान्तरायस्पर्शनरसनेन्द्रियावरणक्षयोपशमे सति १ (प्रबन्धोऽयं त. रा. वा. २. १९-२०, वा. १-१ व्याख्याभ्यां समानः।) शेषेन्द्रियसर्वघातिस्पर्धकोदये चाङ्गोपाङ्गनामलाभावष्टम्भे व्दीन्द्रिजातिकर्मोदयवशवर्तितायां च सत्यां स्पर्शनरसनेन्द्रिये आविर्भवतः।

त्रीणि इन्द्रियाणि येषां ते त्रीन्द्रियाः। के तु? कुन्थुमत्कुणादयः२ (से किं तं तेइंदिय-संसार-समावन्न-जीवपन्नवणा? तेइंदिय संसारसमावन्न-जीवपन्नवणा अणेगविहा पन्नत्ता। तं जहा, ओवइया, रोहिणिया, कुंथू, पिपीलिया, उद्दंसगा, उद्देहिया, उक्कलिया, उप्पाया, उप्पाडा, तणाहारा, कट्ठाहारा, मालुया, पत्ताहारा, तणब्रेटिंया, पत्तबेंटिया, पुप्फबेंटिया, बीयबेंटिया, तेबुरणमिंजिया, तओसिमिंजिया, कप्पासट्ठिमिजिया, हिल्लिया, झिल्लीया, झिंगिरा, किंगिरिडा, बाहुया, लहुया, सुभगा, सोवत्थिया, सुयबेटा, इंदकाइया, इंदगोवया, तुरतुंबगा, कुच्छलवाहगा, जूया, हालाहला, पिसूया, सयवाइया, गोम्ही, हत्थिसोंडा, जे यावन्ने तहप्पगारा। प्रझा. १.४५)[६] उक्तं च-

---

समाधान --- जिस समय प्रधानरुपसे वस्तु विवक्षित होती है, उस समय वस्तुको छोडकर पर्याय नहीं पायी जाती है, इसलिये वस्तु ही रस हैं इस विवक्षामें रसके कर्मसाधनपना हैं जैसे जो चखा जाय,वह रस हैं तथा जिस समय प्रधानरुपसे पर्याय विवक्षित होती है, उस समय द्रव्यसे पर्यायका भेद बन जाता है, इसलिये जो उदासीनरुपसे अवस्थित भाव हाय उसीका कथन किया जाता हैं इस प्रकार रसके भावसाधनपना भी बन जाता हैं जैसे, आस्वादनरुप क्रियाधर्मको रस कहते हैं सूक्ष्म परमाणु आदिमें रस का अभाव हो जायगा, यह कहना भी ठिक नहीं है, क्योंकि, इसका उत्तर पहले दे आये हैं

शंका --- स्पर्शन और रसना इन दोनों इन्द्रियोंकी उत्पत्ति किस कारणसे होती है?

समाधान --- वीर्यान्तराय और स्पर्शन व रसनेन्द्रियावरण कर्मके क्षयोपशम होनेपर, शेष इन्द्रियावरण कर्मके सर्वघाती स्पर्ध्दकोंके उदय होनेपर, आंगोपांग नामकर्मका आलम्बन होनेपर तथा द्विन्द्रियजाति नामकर्मके उदयकी वशवर्तिता होनेपर स्पर्शन और रसना ये दो इन्द्रियां उत्पन्न होती हैं

जिनके तीन इन्द्रियां होती है उन्हें त्रीन्द्रिय जीव कहतें हैं

शंका --- वे तीन इन्द्रिय जीव कौन कौन हैं?

समाधान --- कुन्थु और खटमल आदि त्रीन्द्रिय जीव हैं कहा भी है--

---

कुंथु-पिपीलिक मंकुण-विच्छिअ-जू इंदगोव-गोम्ही य।

उत्तिंगणट्टियादी१ (मु. उतिरंगणट्टियादी? णेया।) णेया तीइंदिया जीवा२ (प्रा. पं.१,७१.। कुंथुपिपीलिके प्रतीते। मत्कुणवृश्चिकयूकेन्द्रगोपाश्चापि प्रसिध्दा एव। गोमीति गुल्मि: कर्णश्रृगाली (कनखजूरा इति हिन्दीभाषायम्) विशेषपरिज्ञानायान्येऽपि त्रीन्द्रियजीवा उल्लिख्यन्ते। गोमीमंकुणजूआपिपीलिउद्देहिया य मक्कोडा। इल्लियघयमिल्लीओ सावय गोकीडजाईओ।। गद्दहयचोरकीडागोमयकीडा य धन्नकीडा या। कुंथु गु (गो) वालिय इलिया तेइंदिय इंदगोवाई।। उद्देहिया-उपदेहिया वाल्मीक्य:। इल्लिका धान्यादिषूत्पन्ना:। 'घयमिल्लि' त्ति घृतेलिका:। 'सावयेति' लोकभाषया सावा, ते मनुष्याणामशुभोदर्कत: प्राग् भाविनि कष्टे शरीरकेशेषूत्पद्यन्ते। गोकीटका: प्रतीता एव। जातिग्रहणेन सर्वतिरश्चां कर्णाद्यवयवेषूत्पन्नाश्च जम्बुकचिच्चडादयो ग्राह्या:। गद्दहय-गर्दभका: (गोशालोत्पन्नजन्तव:)

चोरकीटा:, (विष्टोत्पन्नजन्तव:) गोमयकीटाच्छगणोत्पन्ना:। धान्यकीटा घुणत्वेन प्रसिध्दा: शेषाश्च स्वनामसिध्दा:। जी. वि. प्र. पृ. ११. कुंथुपिवीलिउड्डंसा उक्कलुद्देहिया तहा। तणहारकट्ठ हारा य मालुरा पत्तहारगा।। कप्पासट्ठिंमि जायंति दुगा तउसमिंजगा। सदावरी य गुम्प्नी य बोधव्वा इन्दगाइया।। इन्दगोवगमाईया णेगहा एवमायाओ । उत्त. ३६, १३८-१४०.) ।।१३७।।

कानि तानि त्रीणीन्द्रियाणीति चेत्। स्पर्शनरसनघ्राणानि। स्पर्शनरसने उक्त-लक्षणे। किं घ्राणमिति चेत् करणसाधनं घ्राणम्। कुत:? पारतन्त्र्यादिन्द्रियाणाम्। ततो वीर्यान्तरायघ्राणेन्द्रियावरणवक्षयोपशमाङ्गो पाङ्गनामलाभावष्टम्भाज्जिघ्रत्यनेनात्मेति घ्राणम्। कर्तृसाधनं च भवति स्वातन्त्र्यविवक्षायामिन्द्रियाणाम्। दृश्यते चेन्द्रियाणां लोके स्वातन्त्रविवक्षा, यथेदं मेऽक्षि सुष्ठु पश्यति, अयं मे कर्ण: सुष्ठु

कुन्थु, पिपीलिका, खटमल, बिच्छू, जूं, इन्द्रगोप, कनखजूरा, गर्दभाकार कीटविशेष तथा नट्टियादिक कीटविशेष, ये सब त्रीन्द्रिय जीव हैं ।।१३७।।

शंका --- वे तीन इन्द्रियाँ कौन कौन हैं?

समाधान --- स्पर्शन, रसना और घ्राण ये तीन इन्द्रियां हैं। इनमेंसे स्पर्शन और रसनाका लक्षण कह आये। अब घ्राण-इन्द्रियका लक्षण कहते हैं ---

शंका --- घ्राण किसे कहते हैं?

समाधान --- घ्राण शब्द करणसाधन हैं, क्योंकि, पारतन्त्र्यविवक्षामें इन्द्रियोंके करण साधन होता है। इसलिये वीर्यान्तराय और घ्राणेन्द्रियावरण कर्मके क्षयोपशम तथाव आंगोपांग नामकर्मके उदयके आलम्बनसे जिसके व्दारा सूंघा जाता है उसे घ्राण-इन्द्रिय कहते हैं। अथवा, इन्द्रियोंकी स्वातन्त्र्यविवक्षामें घ्राण शब्द कर्तृसाधन भी होता है, क्योंकि, लोकमें इन्द्रियोंकी स्वातन्त्र्यविवक्षा भी देखी जाती है। जैसे, यह मेरी आंख अच्छी तरह देखती है; यह मेरा कान अच्छी तरह सुनता है। अत: पहले कहे हुए हेतुओंके मिलनेपर जो सूंघता है उसे घ्राण-इन्द्रिय कहते हैं।

श्रृणोतीति। तत: पूर्वोक्तहेतुसन्निधाने सति जिघ्रतीति घ्राणम्। कोऽस्य विषय:? गन्ध:। अयं गन्धशब्द: कर्मसाधन:। कुत:? यदा द्रव्यं प्राधान्येन विवक्षितं तदा न ततो व्यतिरिक्ता: स्पर्शादय:

केचन सन्तीति। एतस्यां विवक्षायां कर्मसाधनत्वं स्पर्शादीनामवसीयते, गन्ध्यत इति गन्धो वस्तु। यदा तु पर्यायः प्राधान्येन विवक्षितस्दा भेदोपपत्तेः औदासीन्यावस्थितभावकथनाद्भावसाधनत्वं स्पर्शदीनां युज्यते, गन्धनं गन्ध इति। कुत एतेषामुत्पत्तिरिति चेत्? वीर्यान्तरायस्पर्शनरसनघ्राणेन्द्रियावरण-क्षयोपशमे सति शेषेन्द्रियसर्वघातिस्पर्धकोदये चाङ्गोपाङ्गनामलाभावष्टम्भे त्रीन्द्रिय-जातिकर्मोदयवशवर्तितायां च सत्यां स्पर्शनरसनघ्राणेन्द्रियाण्याविर्भवन्ति १ (प्रबन्धोऽयं त. रा. वा. २. १९-२०, वा. १-१ व्याख्याभ्यां समानः।)[६]

चत्वारि इन्द्रियाणि येषां ते चतुरिन्द्रियाः। के ते? मशकमक्षिकादयः २ (से किं तं उचरिंदिय-संसारसमावन्न-जीवपन्नवणा? २ अणेगविहा पन्नत्ता। तं जहा, अंधिय-पत्तिय-मच्छिय-मसगा कीडे तहा पयंगे य। ढंकुण-कुक्कड-कुक्कुह-नंदावत्ते य सिंगिरडे।। किण्हपत्ता, नीलपत्ता, लोहियपत्ता, हालिद्दपत्ता, सुक्किल्लपत्ता, चित्तपक्खा, विचित्तपक्खा, ओहंजलिया, जलचारिया, गंभीरा, णीणिया, तंतवा, अच्छिरोडा, अच्छिवेहा, सारंगा, नेऊरा, दोला, भमरा, भरिली, जरुला, तोट्टा, विंछुवा, पत्तविच्छुया, छाणविच्छुया, जलविच्छुया, पियंगाला, कणगा, गोमयकीडा, जे यावन्ने् तहप्पगारा[६] प्रज्ञा. १. ४६.) उक्तं च ---

---

शंका --- घ्राण-इन्द्रियका विषय क्या हैं?

समाधान --- इस इन्द्रियका विषय गन्ध है।

यह गन्ध शब्द कर्मसाधन है, क्योंकि, जिस समय प्रधानरुपसे द्रव्य विवक्षित होता है, उस समय द्रव्यसे भिन्न स्पर्शादिक कुछ भी नहीं रहते हैं, इसलिये इस विवक्षामें स्पर्शादिकके कर्मसाधन समझना चाहिये। जैसे, 'जो सूंघा जाय' इस प्रकारकी निरुक्ति करनेपर गन्ध द्रव्यरुप ही पडता है। तथा जिस समय प्रधानरुपसे पर्याय विवक्षित होती है, उस समय द्रव्यसे पर्यायका भेद बन जाता है, अतएव उदासीनरुपसे अवस्थित जो भाव है, वही कहा जाता है। इस तरह स्पर्शादिकके भावसाधन भी बन जाता है। जैसे सूंघनेरुप क्रियाधर्मको गन्ध कहते हैं।

शंका --- इन तीनों इन्द्रियोंकी उत्पत्ति किस कारणसे होती है?

समाधान --- वीर्यान्तराय और स्पर्शन, रसना तथा घ्राण-इन्द्रियावरणके क्षयोपशमके होनेपर, शेष इन्द्रियावरण कर्मके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदय होनेपर, आंगोपांग नामकर्मके उदयके

आलम्बन होते पर और त्रीन्द्रियजाति नामकर्मके उदयकी वशवर्तिताके होने पर स्पर्शन, रसना और घ्राण ये तीन इन्द्रियां उत्पन्न होती है।

जिनके चार इन्द्रियां पाई जाती हैं वे चतुरिन्द्रिय जीव होते हैं।

शंका --- वे चतुरिन्द्रिय जीव कौन कौन हैं?

समाधान --- मच्छर, मक्खी और चतुरिन्द्रिय जीव हैं । कहा भी है ---

---

मक्कडय-भमर-महुवर-मसय-पदंगा य सलह-गोमच्छी।

मच्छी सदंस कीडा णेया चउरिंदिया जीवा१ (प्रा. पं. १, ७२ पाठभेद: अंधिया पोत्तिया चेव मच्छिया मसगा तहा। भमरे कीडपयंगे य ढंकुणे उक्कुडो तहा।। कुक्कुडे भिंगिरीडी य नंदावत्ते य विच्छुए। टोले भिंगारी य वियडी अच्छिवेहए।। अच्छिले माहए अच्छिरोडए विचित्ते चित्तपत्तए। उहिंजलिया जलकारी य नोया तंतवयाइया।। इय चउरिंदिया एएऽणेगहा एवमायओ।। उत्त. ३६, १४७, १५०.) ।।१३८।।

कानि तानि चत्वारीन्द्रियाणीति चेत्स्पर्शनरसनघ्राणचक्षूंषि। स्पर्शनरसनघ्राणानि उक्तलक्षणानि। चक्षुष: स्वरुपमुच्यते। तद्यथा-करणसाधनं चक्षु:। कुत:? चक्षुष: पारतन्त्र्यात्। इन्द्रियाणां हि लोके पारतन्त्र्यविवक्षा दृश्यते आत्मन: स्वातन्त्र्यविवक्षायाम्। यथानेनाक्ष्णा सुष्ठु पश्यामि, अनेन कर्णेन सुष्ठु श्रृणोमीति। ततो वीर्यान्तरायचक्षुरिन्द्रियावरणक्षयोपामङ्गोपाङ्गनामलाभावष्टम्भाच्चष्टेरने-२ (मु. वष्टम्माच्चक्षु:। अनेकार्थ।) कार्थत्वाद्दर्शनार्थविवक्षायां चष्टेऽर्थान् पश्यत्यनेनेति चक्षु:। कर्तृसाधनं च ३ (मु. चक्षुष: कर्तृसाधनं च।) भवति स्वातन्त्र्यविवक्षायाम्। इन्द्रियाणां हि लोके स्वातन्त्र्यविवक्षा दृश्यते च, यथेदं ४ (मु. विवक्षा च दृश्यते यथेदं।) मेऽक्षि

मकडी, भोंरा, मधु-मक्खी, मच्छर, पतंग, शलभ, गोमक्खी, मक्खी, और दंशसे दशनेवाले कीडोंको चतुरिन्द्रिय जीव जानना चाहिये ।।१३८।।

शंका --- वे चार इन्द्रियाँ कौन कौन हैं?

समाधान --- स्पर्शन, रसना, घ्राण, और चक्षु ये चार इन्द्रियां हैं। इसमेंसे स्पर्शन, रसना और घ्राणके लक्षण कह आये। अब चक्षु-इन्द्रियका स्वरुप कहते हैं। वह इस प्रकार है- चक्षु-इन्द्रिय

करणसाधन है, क्योंकि, उसकी पारतन्त्र्यविवक्षा है। जिस समय आत्माकी स्वातन्त्र्यविवक्षा होती है, उस समय लोकमें इन्द्रियोंकी पारतन्त्र्यविवक्षा देखी जाती है। जैसे, इस चक्षुसे अच्छी तरह देखता हूं, इस कानसे अच्छी तरह सुनता हूं। इसलिये वीर्यान्तराय और चक्षु इन्द्रियावरणके क्षयोपशम और आंगोपांग नामकर्मके उदयके लाभसे 'चक्षिड' धातु अनेकार्थक होनेसे यहां पर दर्शनरुप अर्थकी विवक्षा होनेपर 'जिसके व्दारा पदार्थोंको देखता है वह चक्षु है। तथा स्वातन्त्र्यविवक्षामें चक्षु इन्द्रियके कर्तृसाधन भी होता है, क्योंकि, इन्द्रियोंकी लोकमें स्वातन्त्र्यविवक्षा भी देखी जाती है। जैसे, मेरी यह आँख अच्छी तरह देखती है, यह मेरा कान अच्छी तरह सुनता है। इसलिये पहले कहे गये हेतुओंके मिलने पर जो देखती है उसे चक्षु-इन्द्रिय कहते हैं।

सुष्ठु पश्यति, अयं मे कर्णःसुष्ठु श्रृणोतीति । ततः पूर्वोक्तहेतुसन्निधाने सति चष्ट इति चक्षुः । कोऽस्य विषयश्चेव्दर्णः । अयं वर्णशब्दः कर्मसाधनः । यथा यदा द्रव्यं प्राधान्येन विवक्षिंत तदेन्द्रियेण द्रव्यमेव सन्निकृष्यते, न ततो व्यतिरिक्ताः स्पर्शादयः सन्तीत्ये-तस्यां विवक्षायां कर्मसाधनत्वं स्पर्शादीनामवसीयते, वर्ण्यत इति वर्णः । यदा तु पर्यायः प्राधान्येन विवक्षितस्तदा भेदोपपत्तैरौदासीन्यावसीन्यावस्थितभावकथनाद्भावसाधनत्वं स्पर्शादीनां युज्यते वर्णनं वर्णः। कुत एतेषामुत्पत्तिश्चेव्दीर्यान्तरायस्पर्शनसनघ्राणचक्षुरावरणक्षयोपशमे शेषेन्द्रियसर्वघातिस्पर्धकोदये चाङ्गोपाङ्गनामलाभावष्टम्भे चतुरिन्द्रियजातिकर्मोदयवशवर्तितायां च सत्यां चतुर्णामिन्द्रियाणामाविर्भावो भवेत् १ (सन्दर्भोऽयं त. रा. वा. २. १९-२० वा. १-१. व्याख्याभ्यां समानः।)[६]

पञ्च इन्द्रियाणि येषां ते पञ्चेन्द्रियाः। केते? जरायुजाण्डजादयः। उक्तं च ---

---

शंका --- इस इन्द्रियका विषय क्या है।

समाधान --- वर्ण इस इन्द्रियका विषय है। यह वर्ण शब्द कर्मसाधन है। जैसे, जिस समय प्रधानरुपसे द्रव्य विवक्षित होता है, उस समय इन्द्रियसे द्रव्यका ही ग्रहण होता है, क्योंकि, उससे भिन्न स्पर्शादिक पर्यायें नहीं पाई जाती हैं। इसलिये इस विवक्षामें स्पर्शादिकके कर्मसाधन जाना जाता है। उस समय जो दखा जाय उसे वर्ण कहते हैं, ऐसी निरुक्ति करनी चाहिये। तथा जिस

समय पर्याय प्रधानरुपसे विवक्षित होती है, उस समय द्रव्यसे पर्यायका भेद बन जाता है, इसलिये उदासीनरुपसे अवस्थित जो भाव है, उसीका कथन किया जाता है। अतएव स्पर्शादिकके भावसाधन भी बन जाता है। उस समय देखनेरुप धर्मको वर्ण कहते हैं ऐसी निरुक्ति होती हैं।

शंका --- इन चारों इन्द्रियोंकी उत्पत्ति किस कारणसे होती है?

समाधान --- वीर्यान्तराय और स्पर्शन, रसना, घ्राण तथा चक्षु इन्द्रियावरण कर्मके क्षयोपशम, शेष इन्द्रियावरण सर्वघाती स्पर्ध्दकोंका उदय, आंगोपांग नामकर्मके उदयका आलम्बन और चतुरिन्द्रिय जाति नामकर्मके उदयकी वशवर्तिताके होनेपर चार इन्द्रियोंकी उत्पत्ति होती है।

जिनके पांच इन्द्रियाँ होती हैं उन्हें पंचेन्द्रिय जीव कहते हैं।

शंका --- ये पंचेन्द्रिय जीव कौन कौन हैं?

समाधान --- जरायुज और अण्डज आदिक पंचेन्द्रिय जीव हैं। कहा भी है ---

स्वेदज, संमूर्च्छिम, उध्दिज्ज, औपपादिक, रसज, पोत, अंडज और जरायुज, ये सब पंचेन्द्रिय जीव जानना चाहिये ।।१३१।।

संसेदिम १ (मु. सस्सेदिम।) -सम्मुच्छिम-उब्भेदिम-ओववादिया २ (अ. ब. प्रतौ ओपमादिया चेय।) चेव।

रस-पोतंडजजरजा ३ (मु. रस. पोदंडजरायुज।) पंचिंदिया जीवा ४ (प्रा. पं. १, ७३. पाठभेद: से. बेमि संतिमे तसा पाणा, तं जहा, अंडया पोयया जराउआ रसया संसेयया संमुच्छिमा उब्भियया उववाइया, एस संसारेत्ति पवुच्चइ। आचा. सू. ४९. उपैत्युपपद्यतेऽस्मिन्नित्युपपाद:। त. रा. वा. पृ. ९८. उपपाताज्जाता उपपातजा:। अथवा उपपाते भवा औपपातिका देवा नारकाश्च। आचा. नि. पृ. ६३. सम्पूर्णावयव: परिस्पंदादिसामर्थ्योपलक्षित: पोत:। शुक्रशोणितपरिवरणमुपात्तकाठिन्यं नखत्वक्सदृशं परिमंडलमंडं, अंडे जाता: अंडजा:। जालवत्प्राणिपरिवरणं विततमांसशोणितं जराय:, जरायौ जाता जरायुजा:। त. रा. वा. पृ. १००, १०१.) ।।१३९।।

कानि तानि पाञ्चापीन्द्रियाणीति ५ (मु. पञ्चेन्द्रियाणीति।) चेत? स्पर्शनरसनघ्राणचक्षु:श्रोत्राणि। इमानि स्पर्शनादीनि करणसाधनानि। कुत:? पारतन्त्र्यात् । इन्द्रियाणां हि लोके दृश्यते च पारतन्त्र्यविवक्षा आत्मन: स्वातन्त्र्यविवक्षायाम्, अनेनाक्ष्णा सुष्ठु

पश्यामि, अनेन कर्णेन सुष्ठु श्रृणोमीति। ततो वीर्यान्तरायश्रोत्रेन्द्रियावरणक्षयोपशमाङ्गोपाङ्गनामलाभावष्टम्भाच्छृणोत्यनेनेति श्रोत्रम्। कर्तृसाधनं च भवति स्वातन्त्र्यविवक्षायाम्। दृश्यते चेन्द्रियाणां लोके स्वातन्त्र्यविवक्षा, इदं मेऽक्षि सुष्ठु पश्यति, अयं मे कर्णः सुष्ठु श्रणोतीति। ततः पूर्वोक्तहेतुसन्निधाने सति श्रृणोतीति श्रोत्रम्। कोऽस्य विषयः? शब्दः। यदा द्रव्यं प्राधान्येन विवक्षितं तदेन्द्रियेण द्रव्यमेव सन्निकृष्यते, न ततो व्यतिरिक्ताः स्पर्शादयः केचन सन्तीति एतस्यां विवक्षायां कर्मसाधानत्वं शब्दस्य

शंका --- वे पाँचोंही इन्द्रियाँ कौन कौन हैं?

समाधान --- स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र। ये स्पर्शनादिक इन्द्रियां करण-साधन हैं, क्योंकि, वे परतन्त्र देखी जाती हैं। लोकमें आत्माकी स्वातन्त्र्यविवक्षा होनेपर इन्द्रियोंकी पारतन्त्र्याविवक्षा देखी जाती है। जैसे, मैं इस आंखसे अच्छी तरह देखता हूं, इस कानसे अच्छी तरह सुनता हूं। इसलिये वीर्यान्तराय और श्रोत्र इन्द्रियावरण कर्मके क्षयोपशम तथा आंगोपांग नामकर्मके आलम्बनसे जिसके व्दारा सुना जाता है, उसे श्रोत्र-इन्द्रिय कहते हैं। तथा स्वातन्त्र्याविवक्षामें कर्तृसाधन होता है, क्योंकि, लोकमें इन्द्रियोंकी स्वातन्त्र्यविवक्षा भी देखी जाती है। जैसे, यह मेरी आँख अच्छी तरह देखती हैं, यह मेरा कान अच्छी तरह सुनता है। इसलिये पहले कहे गये हेतुओंकेमिलने पर जो सुनती है उसे श्रोत्र-इन्द्रिय कहते हैं।

शंका --- इसका विषय क्या है?

समाधान --- शब्द इसका विषय है। जिस समय प्रधानरुपसे द्रव्य विवक्षित होता है, उस समय इन्द्रियोंकेव्दारा द्रव्यका ग्रहण होता है। उससे भिन्न स्पर्शादिक कोई चीज ---

---

युज्यत इति, शब्द्यत इति शब्दः। यदा तु पर्यायः प्राधान्येन विवक्षितस्तदा भेदोपपत्तेः औदासीन्यावस्थितभावकथनाद्भावसाधनः १ (मु. साधनं ।) शब्दः, शब्दनं शब्द इति २ (प्रबन्धोऽयं त.रा. वा. २. १९-२० वा. १-१ व्याख्याभ्यां समानः।)। कुत एतेषामाविर्भाव इति चेव्दीर्यान्तरायस्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्रेन्द्रियावरण-क्षयोपशमे सति अङ्गोपाङ्गनामलाभावष्टम्भे पञ्चेन्द्रियजातिकर्मोदयवशवर्तितायां च सत्यां पञ्चानामिन्द्रियाणामाविर्भावो भवेत् ३ (म. भवेदिति।)। नेदं व्याख्यानमत्र प्रधानम्,

'एकव्दित्रिचतु:पञ्चेन्द्रियजातिनामकर्मोदयादेकेव्दित्रिचतु:पञ्चेन्द्रिया भवन्ति' इति भावसूत्रेण सह विरोधात्' ततः एकेन्द्रियजातिनाम्कर्मोदयादेकेन्द्रियः, व्दीन्द्रियजातिनामकर्मोदयाद् व्दीन्द्रियः,' त्रीन्द्रियजातिनामकर्मोदयात् त्रीन्द्रियः, चतुरिन्द्रियजातिनामकर्मोदयाच्चतुरिन्द्रियः, पञ्चेन्द्रियजातिनामकर्मोदयात्पञ्चेन्द्रियः, एषोऽर्थोऽत्र प्रधानम्, निरवद्यत्वात्।

नहीं है। इस विवक्षामें शब्दके कर्मसाधनापना बन जाता है। जैसे, 'शब्द्यते' अर्थात् जो ध्वनिरुप हो वह शब्द है। तथा जिस समय प्रधानरुपसे पर्याय विवक्षित होती है, उस समय द्रव्यसे पर्यायका भेद सिध्द हो जाता है, अतएव उदासीनरुपसे अवस्थित भावका कथन किया जानेसे शब्द भावसाधन भी है। जैसे, 'शब्दनम् शब्दः' अर्थात् ध्वनिरुप क्रियाधर्मको शब्द कहते हैं।

शंका --- इन पांचो इन्द्रियोंकी उत्पत्ति कैसे होती है?

समाधान --- वीर्यान्तराय और स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु तथा श्रोत्रेन्द्रियावरण कर्मके क्षयोपशम होने पर, आंगोपांग नामकर्मके आलम्बन होने पर, तथा पंचेन्द्रियजाति नामकर्मके उदयकी वशवर्तिताके होने पर पांचों इन्द्रियोंकी उत्पत्ति होती है। फिर भी वीर्यान्तराय और स्पर्शन इन्द्रियावरण आदिके क्षयोपशमसे एकेन्द्रिय आदि जीव होते हैं, यह व्याख्यान यहां पर प्रधान नहीं है, क्योंकि, 'एकेन्द्रिय, व्दीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रियजाति नामकर्मके उदयसे एकेन्द्रिय, व्दीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जीव होते हैं' भावानुगमके इस कथनसे पूर्वोक्त कथनका विरोध आता है। इसलिये एकेन्द्रियजाति नामकर्मके उदयसे एकेन्द्रिय, व्दीन्द्रियजाति नामकर्मके उदयसे व्दीन्द्रिय, त्रीन्द्रियजाति नामकर्मके उदयसे त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रियजाति नामकर्मके उदयसे चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय नामकर्मके उदयसे पंचेन्द्रिय जीव उत्पन्न होते हैं, यही अर्थ यहां पर प्रधान है, क्योंकि, यह कथन निर्दोष है।

जिनके इन्द्रियाँ नहीं पाई जातीं हैं उन्हें अनिन्द्रिय जीव कहते हैं।

शंका --- वे कौन हैं?

न सन्तीन्द्रियाणि येषां तेऽनिन्द्रियाः। के ते ? अशरीराः सिध्दाः। उक्तं च -

ण वि इंदिय-करण-जुदा अवग्गहादीहि गाहया अत्थे ।

णेव य इंदिय-सोक्खा अणिंदियाणंत-णाण-सुहा १ (प्रा. पं. १, ७४। गो. जी. १७४.) ।।१४०।।

तेषु सिध्देषु भावेन्द्रियस्योपयोगस्य सत्त्वात्सेन्द्रियास्त इति चेन्न, क्षयोपशम-जनितस्योपयोगस्येन्द्रियत्वात्। न च क्षीणाशेषकर्मसु सिध्देषु क्षयोपशमोऽस्ति, तस्य क्षायिकभावेनापसारितत्वात्।

एकेन्द्रियविकल्पप्रतिपादनार्थमुत्तरसूत्रमाह ---

एइंदिया दुविहा, बादरा सुहुमा । बादरा दुविहा, पज्जत्ता अपज्जत्ता । सुहुमा दुविहा, पज्जत्ता अपज्जत्ता ।।३४।।

एकेन्द्रिया: व्दिविधा:-बादरा: सूक्ष्मा इति। बादरशब्द: स्थूलपर्याय:, स्थूलत्वं चानियतम् ततो न ज्ञायते के स्थूला इति। चक्षुर्ग्राह्याश्चेन्न, अचक्षुर्ग्राह्याणां स्थूलानां सूक्ष्मतापत्ते:२ (सूक्ष्मतोपपत्ते: ।) अचक्षुर्ग्राह्याणामपि बादरत्वे सूक्ष्मबादराणामविशेष: स्यादिति चेन्न,

---

समाधान --- शरीररहित सिध्द अनिन्द्रिय हैं। कहा भी हैं ---

वे सिध्द जीव इन्द्रियोंके व्यापारसे युक्त नहीं हैं और अवग्रहादिक क्षायोपशमिक ज्ञानके व्दारा पदार्थोंको ग्रहण नहीं करते हैं। उनके इन्द्रिय-सुख भी नहीं है, क्योंकि, उनका अनन्त ज्ञान और अनन्त सुख अनिन्द्रिय हैं ।।१४०।।

शंका --- उन सिध्दोंमें भावेन्द्रिय और तज्जन्य उपयोग पाया जाता है, इसलिये वे इन्द्रियसहित हैं?

समाधान --- नहीं, क्योंकि, क्षयोपशमसे उत्पन्न हुए उपयोगको इन्द्रिय कहते हैं। परंतु जिनके संपूर्ण कर्म क्षीण हो गये हैं, ऐसे सिध्दोंमें क्षयोपशम नहीं पाया जाता है, क्योंकि, वह क्षायिक भावके व्दारा दूर कर दिया है।

अब एकेन्द्रिय जीवोंके भेदोंके प्रतिपादन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं ---

एकेन्द्रिय जीव दो प्रकारके हैं-बादर और सूक्ष्म। बादर एकेन्द्रिय दो प्रकारके हैं-पर्याप्त और अपर्याप्त। सूक्ष्म एकेन्द्रिय दो प्रकारके हैं-पर्याप्त और अपर्याप्त ।।३४।।

एकेन्द्रिय जीव बादर और सूक्ष्मके भेदसे दो प्रकारके हैं।

शंका --- बादर शब्द स्थूलका पर्यायवाची है, और स्थूलता नियत नहीं है, इसलिये यह मालूम नहीं पडता है, कि कौन कौन जीव स्थूल हैं । जो चक्षु इन्द्रियके व्दारा ग्रहण करने योग्य हैं वे स्थूल हैं, यदि ऐसा कहा जावे सो भी नहीं बनता है, क्योंकि, ऐसा माननेपर, जो

आर्षस्वरुपानवगमात्। बादरशब्दोऽयं स्थूलपर्यायः, अपि तु बादरनाम्नः, कर्मणो वाचकः। तदुदयसहचरितत्वाज्जीवोऽपि बादरः। शरीरस्य स्थौल्यनिर्वर्तकं कर्म बादरमुच्यते। सौक्ष्म्यनिर्वर्तकं कर्म सूक्ष्मम् १ (यदुदयादन्याबाधाकरशरीरं भवति तद बादरनाम। सूक्ष्मशरीरनिर्वर्तकं सूक्ष्मनाम। गो. क., जी. प्र. टी. ३३,. स. सि. ८-११.)ं तथा व चक्षुषाऽग्राह्यं २ (मु. तथापि चक्षुषोऽग्राह्यं।) सूक्ष्मशरीरम्, तद्ग्राह्यं बादरमिति तव्दतां तव्दयपदेशो हठादास्कन्देत्। ततश्चक्षुर्ग्राह्या बादराः, अचक्षुर्ग्राह्याः सूक्ष्मा ३ (यदुयाद् जीवानां चक्षुर्ग्राह्यशरीरत्वलक्षणं बादरत्वं भवति तद् बादरनाम, पृथीव्यादेरेकैकशरीरस्य चक्षुर्ग्राह्यात्वाभावेऽपि बादरत्वपरिणामविशेषाद् बहूनां समुदाये चक्षुपा ग्रहणं भवति। तव्दिपरीतं सूक्ष्मनाम, यदुदयाद् बहूनां समुदितानामपि जन्तुशरीराणां चक्षुर्ग्राह्यता न भवति। क. प्र. पृ. ७.) इति तेषामेताभ्यामेव भेदः समापतेदन्यथा ४ (मु. समापतद।) तेषामविशेषतापत्तेरिति चेन्न स्थूलाश्च भवन्ति चक्षुर्ग्राह्याश्च न भवन्ति, को विरोधः स्यात्? सूक्ष्म-जीवशरीरादुए शंरीरं बादरम्, तव्दन्तो जीवाश्च बादराः ं ततोऽसंख्येयगुणहीनं शरीरं सूक्ष्मम्, तव्दन्तो जीवाश्च सूक्ष्मा उपचारादित्यपि कल्पना न साध्वी, सर्व -

---

स्थूल जीव चक्षु इन्द्रियके व्दारा ग्रहण करने योग्य नहीं हैं उन्हें सूक्ष्मपनेकी आपत्ति प्राप्त होती है। और जिनका चक्षु इन्द्रियसे ग्रहन नहीं हो सकता है ऐसे जीवोंकोभी बादर मान लेनेपर सूक्ष्म और बादरोंमें कोई भेद नहीं रह जाता है?

समाधान --- नहीं, क्योंकि, यह आशंका आर्षके स्वरुपकी अनभिज्ञताकी द्योतक है। यह बादर शब्द स्थूलका पर्यायवाची नहीं है, किंतु बादर नाम नामकर्मका वाचक है, इसलिये उस बादर नामकर्मके उदयके संबन्धसे जीव भी बादर कहा जाता है।

शंका --- शरीरकी स्थूलताको उत्पन्न करनेवाले कर्मको बादर और सूक्ष्मताको उत्पन्न करनेवाले कर्मको सूक्ष्म कहते हैं। ऐसी अवस्थामें जो चक्षु इन्द्रियके व्दारा ग्रहण करने योग्य नहीं

है वह सूक्ष्म शरीर है, और जो उसके व्दारा ग्रहण करने योग्य है वह बादर शरीर है, अत: सूक्ष्म और बादर कर्मके उदयवाले सूक्ष्म और बादर शरीरसे युक्त जीवोंको सूक्ष्म और बादर संज्ञा हठात् प्राप्त हो जाती है। इससे यह सिध्द हुआ कि जो चक्षुसे ग्राह्य हैं वे बादर हैं, और जो चक्षुसे अग्राह्य हैं वे सूक्ष्म हैं। सूक्ष्म और बादर जीवोंके इन पूर्वोक्त लक्षणोंसे ही भेद प्राप्त हो जाता है। यदि पूर्वोक्त लक्षण न माने जायं, तो सूक्ष्म और बादरोंमें कोई भेद नहीं रह जाता है?

समाधान --- ऐसा नहीं हैं, क्योंकि, स्थूल तो हों और चक्षुसे ग्रहण करने योग्य न हों, इस कथनमें क्या विरोध है।

शंका --- सूक्ष्म जीव शरीरसे असंख्यातगुणी अधिक अवगाहनाले शरीरको बादर कहते हैं, और उस शरीरसे युक्त जीवोंको उपचारसे बादर कहते हैं। अथवा, बादर शरीरसे असंख्यात गुणी हीन अवगाहनावाले शरीरको सूक्ष्म कहते है और उस शरीरसे युक्त जीवोंको उपचारसे सूक्ष्म कहते हैं?

जघन्यबादराङ्गात्सूक्ष्मकर्मनिर्वर्तिततस्य सूक्ष्मशरीरस्यासंख्येगुणत्वतोऽनेकान्तात्। ततो बादरकर्मोदयवन्तो बादरा:, सूक्ष्मकर्मोदयवन्तो सूक्ष्मा इति सिध्दम्। कोऽनयो: कर्मणोरुदययोर्भेदश्चेत्? मूर्तैरन्यै: प्रतिहन्यमानशरीरनिर्वर्तको बादरकर्मोदय:, अप्रतिहन्यमानशरीरनिर्वर्तक: सूक्ष्मकर्मोदय इति तयोर्भेद:१ (बादरसुहुमुदयेण य बादरसुहुमा हवंति तद्देहा। घादसरीरं थूलं अघाददेहं हवे सुहुमं।। गो. जी. १८३) ॅ सूक्ष्मत्वात्सूक्ष्मजीवानां शरीरमन्यैर्न मूर्तद्रव्यैरभिहन्यते ततो न तदप्रतिघात:२ (मु. तत्प्रतिघात:) सूक्ष्मकर्मणो विपाकादिति चेन्न, अन्यैरप्रतिहन्यमानत्वेन प्रतिलब्धसूक्ष्मव्यपदेशभाज: सूक्ष्मशरीरादसंख्येयगुणहीनस्य बादरकर्मोदयत: प्राप्तबादरव्यपदेशस्य सूक्ष्मत्वं प्रत्यविशेषतोऽप्रतिघाततापत्ते:। अस्तु चेन्न, सूक्ष्मबादरकर्मोदययोरविशेषतापत्ते:। सूक्ष्मशरीरोपादायक: सूक्ष्मकर्मोदयश्चेन्न,

---

समाधान --- यह कल्पना भी ठीक नहीं हैं, क्योंकि, सबसे जघन्य बादर शरीरसे सूक्ष्म नामकर्मके व्दारा निर्मित सूक्ष्म शरीरकी अवगाहना असंख्यातगुणी होनेसे उक्त कथनमें अनेकान्त दोष आता है। इसलिये जिन जीवोंके बादर नामकर्मका उदय पाया जाता है वे बादर हैं, और जिनके सूक्ष्म नामकर्मका उदय पाया जाता है वे सूक्ष्म हैं, यह बात सिध्द हो जाती है।

शंका --- सूक्ष्म नामकर्मके उदय और बादर नामकर्मके उदयमें क्या भेद है?

समाधान --- बादर नामकर्मका उदय दूसरे मूर्त पदार्थोंसे आघात करने योग्य शरीरको उत्पन्न करता है। और सूक्ष्म नामकर्मका उदय दूसरे मूर्त पदार्थोंके व्दारा आघात नहीं करने योग्य शरीरको उत्पन्न करता है। यही उन दोनोंमें भेद है।

शंका --- सूक्ष्म जीवोंका शरीर सूक्ष्म होनेसे ही अन्य मीर्त द्रव्योंके द्वारा आघातको प्राप्त नहीं होता है, इसलिये मूर्त द्रव्योंके साथ प्रतिघातका नहीं होना सूक्ष्म नामकर्मके उदयसे नहीं मानना चाहिये?

समाधान --- नहीं, क्योंकि, ऐसा माननेपर दूसरे मूर्त पदार्थोंके व्दारा आघातको नहीं प्राप्त होनेसे सूक्ष्म संज्ञाको प्राप्त होनेवाले सूक्ष्म शरीरसे असंख्यातगुणी हीन अवगाहनावाले, और बादर नामकर्मके उदयसे बादर संज्ञाको प्राप्त होनेवाले बादर शरीरकी सूक्ष्मताके प्रति कोई विशेषता नहीं रह जाती है, अतएव उसका भी मूर्त पदार्थोंसे प्रतिघात नहीं होगा ऐसी आपत्ति आजायगी।

शंका --- आ जाने दो?

समाधान --- नहीं, क्योंकि, ऐसा माननेपर सूक्ष्म और बादर नामकर्मके उदयमें फिर कोई विशेषता नहीं रह जायगी।

शंका --- सूक्ष्म नामकर्मका उदय सूक्ष्म शरीरको उत्पन्न करनेवाला है, इसलिये उन दोनोंके उदयमें भेद है?

तस्मादप्यसंख्येयगुणहीनस्य बादरकर्मनिर्वर्तितस्य शरीरस्योपलम्भात् । तत्कुतोऽवसीयत इति चेव्देदनाक्षेत्रविधानसूत्रात् । तद्यथा ---

'सव्वत्थोवा सुहुमणिगोदजीवअपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा। सुहुम-वाउ-सुहुमतेउ-सुहुमआउ-सुहुमपुधिवि-अपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा । बादरवाउ-बादरतेउ-बादरआउ-बादरपुढिवि-बादरणिगोदजीव-१ (बादरणिगोदपदिट्ठिदपज्जता किमिदि सुत्तम्हि ण वुत्ता?, ण तेसिं पत्तेयसरीरेसु अंतब्भावादो। धवला अ. पृ. २५०.) बादरवण-प्फदिकाइयपत्तेयसरीर-अपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा। बेइंदिय- तेइंदिय-चिउरिंदिय-पंचिंदिय-अपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा। तस्सेव अपज्जत्तयस्स

उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया। तस्सेव पज्जत्तयस्स उक्कसिया ओगाह विसेसाहिया। सुहुमवाउकाइय-सुहुमतेउकाइग्र-सुहुमआउकाइय-सुहुमपुढवकाइय ---

---

समाधान --- नहीं, क्योंकि, सूक्ष्म शरीरसे भी असंख्यातगुणी हीन अवगाहनावाले और बादर नामकर्मके उदयसे उत्पन्न हुए बादर शरीरकी उपलब्धि होती है।

शंका --- यह किस प्रमाणसे जाना जाता है?

समाधान --- वेदना नामक चौथे खण्डागमके क्षेत्रानुयोगव्दारसंबन्धी सूत्रोंसे जाना जाता है । वे इस प्रकार हैं- सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्तक जीवकी जघन्य अवगाहना सबसे स्तोक (थोडी) है। सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म जलकायिक और सूक्ष्म पृथिविकायिक लब्ध्य-पर्याप्तक जीवोंको जघन्य अवगाहना सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्तककी जघन्य अवगाहनासे उत्तरोत्तर असंख्यातगुणी है। सूक्ष्म पृथिवीकायिक लब्ध्यपर्याप्तक जीवकी जघन्य अवगाहनासे बादर वायुकायिक, बादर अग्निकायिक, बादर जलकायिक, बादर पृथिवीकायिक, बादरनिगोद और सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पतिकायिक लब्ध्यपर्याप्तक जीवोंकी जघन्य अवगाहना उत्तरोत्तर असंख्यातगुणी है। सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पतिकायिक लब्ध्यपर्याप्तक जीवकी जघन्य अवगाहनसे अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पतिकायिक, व्दीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक जीवोंकी जघन्य अवगाहना उत्तरोत्तर असंख्यातगुणी है। लब्ध्यपर्याप्तक पंचेन्द्रिय जीवकी जघन्य अवगाहनासे सूक्ष्म निगोदिया पर्याप्तककी जघन्य अवगाहना कुछ अधिक है। इससे सूक्ष्म निगोदिया पर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना कुछ अधिक है। इससे सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्तककी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है। इससे सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है। इससे सूक्ष्म पर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष ---

---

पज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा। तस्सेव अपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया। तस्सेव पज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहना विसेसाहिया। बादरवाउकाइय-बादरतेउकाइय-बादरआउकाइय-बादरपुढविकाइय-बादरणिगोदजीव-पज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा। तस्सेव अपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया। तस्सेव पज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया। बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्तयस्स

जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा। बेइंदिय-पज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा। तेइंदिय-चउरिंदिय-पंचिंदिय-पज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा संखेज्जगुणा। तेइंदिय-चउरिंदिय-बेइंदिय-बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीर-पंचिंदिय-अपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा संखेज्जगुणा। तेइंदिय-चउरिंदिय-बेइंदिय-बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीर-पंचिंदिय पज्जत्तयस्स उक्कसिया ओगाहणा संखेज्जगुणा १ (मु. तस्सेव पज्जत्तयस्स वि. संस्सेज्जगुणा.) त्ति।

परैर्मूर्तद्रव्यैरप्रतिहन्यमानशरीरनिर्वृत्तकं सूक्ष्मकर्म। तद्विपरीतशरीरनिर्वृत्तकं बादरकर्मेति स्थितम्। तत्र बादराः सूक्ष्माश्च द्विविधाः पर्याप्ताः अपर्याप्ता इति।

अधिक है। इसी तरह सूक्ष्म वायुकायिकसे सूक्ष्म अग्निकायिक, उससे सूक्ष्म जलकायिक, उससे सूक्ष्म पृथिवीकायिक संबन्धी प्रत्येककी क्रमसे, पर्याप्त, अपर्याप्त और पर्याप्तसंबन्धी जघन्य, उत्कृष्ट और उत्कृष्ट अवगाहना उत्तरोत्तर असंख्यातगुणी, विशेषाधिक और विशेषाधिक समझ लेना चाहिये। इसी तरह सूक्ष्मपृथिवीकायिक पर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहनासे बादर वायुकायिक, उससे बादर अग्निकायिक, उससे बादर जलकायिक उससे बादर पृथिवीकायिक, उससे बादर निगोद जीव और उससे निगोदप्रतिष्ठित वनस्पतिकायिकसंबन्धी प्रत्येककी क्रमसे पर्याप्त, अपर्याप्त और पर्याप्तसम्बन्धी जघन्य, उत्कृष्ट और उत्कृष्ट अवगाहना उत्तरोत्तर असंख्यातगुणी, विशेषाधिक और विशेषाधिक समझना चाहिये। सप्रतिष्ठित प्रत्येककी उत्कृष्ट अवगाहनासे बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्तककी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है। इससे व्दीन्द्रिय पर्याप्तकी जघन्य अवगाहना असंख्यात गुणी है। पंचेन्द्रिय पर्याप्तकी जघन्य अवगाहनासे त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, व्दीन्द्रिय, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर और पंचेन्द्रिय अपर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना उत्तरोत्तर संख्यातगुणी है। पंचेन्द्रिय अपर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहनासे त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, व्दीन्द्रिय, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर और पंचेन्द्रिय पर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना उत्तरोत्तर संख्यातगुणी है।

इस पूर्वोक्त कथनसे यह बात सिध्द हुई कि जिसका मूर्त पदार्थोंसे प्रतिघात नहीं होता है ऐसे शरीरको निर्माण करनेवाला सूक्ष्म नामकर्म है, और उससे विपरीत अर्यात् मूर्त पदार्थोंसे प्रतिघातको प्राप्त होनेवाले शरीरको निर्माण करनेवाला बादर नामकर्म है।

पर्याप्तकर्मोदयवन्त: पर्याप्त:। तदुदयवतामनिष्पन्नशरीराणां कथं पर्याप्तव्यपदेशो घटत इति चेन्न, नियमेन शरीरनिष्पादकानां भाविनि भूतवदुपचारतस्तदविरोधात् पर्याप्त-नामकर्मोदयसहचाराव्दा। यदि पर्याप्तशब्दो निष्पत्तिवाचक:, कैस्ते निष्पन्ना इति चेत्पर्याप्तिभि:। कियत्यस्ता इति चेत्सामान्येन षड् भवन्ति-आहारपर्याप्ति: शरीर-पर्याप्ति: इन्द्रियपर्याप्ति: आनापानपर्याप्ति: भाषापर्याप्ति: मन:पर्याप्तिरिति।

तत्राहारपर्याप्तरर्थ उच्यते---शरीरनामकर्मोदयात् पुद्गलपिाकिन आहारवर्गणातपुद्लस्कन्ध: समवेतानन्तपरपमाणुनिष्पादिता आत्मावष्टधक्षेत्रस्था: कर्म ---

---

विशेषार्थ --- यहाँ जो सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्तककी जघन्य अवगाहनासे लेकर पंचेन्द्रिय पर्याप्ततक जीवोंकी उत्कृष्ट अवगाहनाका क्रम बतला आये हैं, उसे देखते हुए यह सिध्द होता है कि सूक्ष्म जीवोंकी मध्यम अवगाहना बादरोंसे भी अधिक होती है। इसलिये छोटी बडी अवगाहनासे स्थूलता और सूक्ष्मता न मानकर स्थूल और सूक्ष्म कर्मके उदयसे सप्रतिघात और अप्रतिघातवाले शरीरको बादर और सूक्ष्म कहते हैं। तथा यहाँ जो वेदनाखण्डके सूत्र उद्धृत किये हैं उनमें सप्रतिष्ठित बादर वनस्पतिसे अप्रतिष्ठित बादर वनस्पतिका स्थान स्वतंत्र माना है। फिर भी यहां 'सव्वत्थोवा' इत्यादि उद्धृत सूत्रमें सप्रतिष्ठिके स्थानको अप्रतिष्ठितके स्थानमें अन्तर्भूत करके सप्रतिष्ठित वनस्पतिका स्वतन्त्र स्थान नहीं बतालाया है।

इनमें, बादर और सूक्ष्म दोनों ही प्रत्येक दो दो प्रकारके हैं, पर्याप्त और अपर्याप्त। उनमेंसे जो पर्याप्त नामकर्मके उदयसे युक्त हैं उन्हें पर्याप्त कहते हैं।

शंका --- पर्याप्त नामकर्मके उदयसे युक्त होते हुए भी जब तक शरीर निष्पन्न नहीं हुआ है तब तक उन्हें पर्याप्त कैसे कह सकते हैं?

समाधान --- नहीं, क्योंकि, नियमसे शरीरको उत्पन्न करनेवाले जीवोंके होनेवाले कार्यमें यह कार्य हो गया, इस प्रकार उपचार कर लेनेसे पर्याप्त संज्ञा करनेमें कोई विरोध नहीं आता है। अथवा, पर्याप्त नामकर्मके उदयसे युक्त होनेके कारण पर्याप्त संज्ञा दी गई है।

शंका --- यदि पर्याप्त शब्द निष्पत्ति वाचक है तो यह बतलाइये कि ये पर्याप्त जीव किनसे निष्पन्न होते हैं।

समाधान --- पर्याप्तियोंसे निष्पन्न होते हैं।

शंका --- ये पर्याप्तियां कितनी हैं?

समाधान --- सामान्यकी अपेक्षा छह हैं--आहारपर्याप्ति, शरीरपर्याप्ति, इन्द्रियपर्याप्ति, आनापानपर्याप्ति, भाषापर्याप्ति और मन:पर्याप्ति। इनमेसें, पहले आहारपर्याप्तिका अर्थ कहते है - शरीर नामकर्मके उदयसे जो परस्पर अनन्त परमाणुओंके संबन्धसे उत्पन्न हुए हैं, और जो आत्मासे व्याप्त आकाश क्षेत्रमें स्थित हैं ऐसे पुद्गलविपाकी आहारवर्गणासंबन्धी

स्कन्धसम्बन्धतो मूर्तीभूतमात्मानं समवेतत्वेन समाश्रयन्ति । तेषामुपगतानां पुद्गल-स्कन्धानां खलरसपर्यायै: १ (परिमणनशक्तेर्निष्पत्तिराहारपर्याप्ति:।) परिणमनशक्तेर्निमित्तानामाप्तिराहारपर्याप्ति:। सा च नान्तर्मुहुर्तमन्तरेण समयेनैकेनैवोपजायते, आत्मनोऽक्रमेण तथाविधपरिणामाभावात्। शरीरोपादानसमयादारभ्यान्तर्मुहूर्तेना २ (आहारपर्याप्तिश्च प्रथमसमय एव निष्पद्यते x x x आहारपर्याप्त्या अपर्याप्तो विग्रहगतावेवोत्पद्यते नोपपातक्षेत्रमागतोऽपि, उपपातक्षेत्रमागतस्य प्रथमसमय एवाहारकत्वात् । तत एकसामयिकी आहारपर्याप्तिनिर्वृत्ति:। नं. सू. १७ टी.) हारपर्याप्तिर्निष्पद्यत इति यावत् । तं खलभागं तिलखलोपममस्थादिस्थिरावयवैस्तिलतैलसमान रसभागं रसरुधिरवसा-शुक्रादिद्रवावयवैरौदारिकादिशरीरत्रयपरिणमन३ (मु. परिणाम) शक्त्युपेतानां स्कन्धानामवाप्ति:४ (परिणमनशक्तेर्निष्पत्ति: शरीरपर्याप्ति:।) शरीरपर्याप्ति:। साहारपर्याप्ते: पश्चादन्तर्मूहूर्तेन निष्पद्यते। योग्यदेशस्थितरुपादि-विशिष्टार्थग्रणशक्त्युत्पत्तेर्निमित्तपुद्गलप्रचयावाप्तिरिन्द्रियपर्याप्ति:५ (विशिष्टाथग्रहणशक्तेर्निष्पत्तिरिन्द्रियपर्याप्ति:।) ६ सापि तत: पश्चादन्तर्मुहर्तादुपजायते । न तदुपकरणाभावात् । उच्छ्वासनिस्सारण ६ (मु. नि:सरण) शक्तेर्निष्पत्तिनिमित्त-पुद्गलप्रचयावाप्तानापानपर्याप्ति:। एषापि तस्मादन्तर्मुहूर्तकाले समतीते भवेत्। भाषावर्गणाया:७ (मु. स्कंधाच्चतु) स्कन्धानुचतुर्विधभाषाकारेण८ (परिणमनशक्तेर्निष्पत्ति: भाषापर्याप्ति) परिणमनशक्तेर्निमित्तनोकर्मपुद्गल -

---

पुद्गलस्कन्ध, कर्मस्कन्धके संबन्धसे कथंचित् मूर्तपनेको प्राप्त हुए आत्माके साथ समवायरुपसे संबन्धको प्राप्त होते हैं, उनको खल और रसभाग पर्यायरुप परिणमन करनेरुप शक्तिको

निमित्तभूत आगत पुद्गलस्कन्धोंकी प्राप्तिको आहारपर्याप्ति कहते हैं। वह आहारपर्याप्ति अन्तर्मुहूर्तके विना केवल एक समयमें उत्पन्न नहीं हो जाती हैं, क्योंकि, आत्माका एकसाथ उस प्रकारका परिणाम नहीं हो सकता है। शरीरको ग्रहण करनेके प्रथम समयसे लेकर एक अन्तर्मुहूर्तमें आहारपर्याप्ति निष्पन्न होती है यह उक्त कथन का तात्पर्य है। तिलकी खलीके समान उस खलभागको हड्डी आदि कठिण अवयवरुपसे और तिलके तैलके समान रसभागको रस, रुधिर, वसा, वीर्य आदि द्रव अवयवरुपसे परिणमन करनेवाले औदारिक आदि तीन शरीरोंकी शक्तिसे युक्त पुद्गलस्कन्धोंकी प्राप्तिको शरीर पर्याप्ति कहते हैं। वह शरीर पर्याप्ति आहार पर्याप्तिके पश्चात् एक अन्तर्मुहूर्तमें पूर्ण होती है। योग्य देशमें स्थित रुपादिसे युक्त पदार्थोंके ग्रहण करनेरुप शक्तिकी उत्पत्तिके निमित्तभूत पुदग्लप्रचयकी प्राप्तिको इन्द्रियपर्याप्ति कहते हैं। यह इन्द्रिय पर्याप्ति भी शरीर पर्याप्तिके पश्चात् एक अन्तर्मुहूर्तमें पूर्ण होती है । परंतु इन्द्रिय पर्याप्तिके पूर्ण हो जानेपर भी उसी समय बाह्य पदार्थसंबन्धी ज्ञान उत्पन्न नहीं होता है, क्योंकि, उस समय उसके उपकरणरुप द्रव्येन्द्रिय नहीं पाई जती है। उच्छ्वास और नि:श्वास

प्रचयावाप्तिर्भाषापर्याप्ति:। एषापि पश्चादन्तर्मुहूर्तादुपजायते। मनोवर्गणास्कन्ध-निष्पन्नपुद्गलप्रचय: अनुभूतार्थस्मरणशक्तिनिमित्त:। मन:पर्याप्ति:१ (गो. जी. गा. ११९. नं. सू. १७. अनयोष्टीका विशेषानुसन्धानाय द्रष्टव्या। मु. मन:पर्याप्ति: (द्रव्यमनोवष्टम्भेनानुमूतार्थस्मरणशक्तेरुत्पत्तिर्मन:पर्याप्तिर्वा ९ एतासां) एतासां प्रारम्भोऽक्रमेण, जन्मसमयादारभ्य तासां सत्त्वाभ्युपगमात्। निष्पत्तिस्तु पुन: क्रमेण २ (पज्जत्तीपट्ठवणं जुगवं तु कमेण होदि णिट्ठवणं । अंतोमुहुत्तकालेणहियकमा तत्तियालावा ।। गो. जी. १२०.) ९ एतासामनिष्पत्तिरपर्याप्ति:।

पर्याप्तिप्राणयो: को भेद इति चेन्न, अनयोर्हिमवव्दिन्ध्ययोरिव भेदोपलम्भात्। यत आहारशरीरेन्द्रियानापानभाषामन:शक्तीनां निष्पत्ते: कारण पर्याप्ति:। प्राणिति एभिरात्मेति प्राणा: पञ्चेन्द्रियमनोवाक्कायानापानायूंषि ३ (गो. जी. १२९ टीकानुसन्धेया।) इति । भवन्त्विन्द्रिया-युष्काया: प्राणव्यपदेशभाज:, तेषामाजन्मन आमरणाद्भवधारणत्वेनोपलम्भात्।

रुप शक्तिकी पूर्णताके निमित्तभूत पुद्गलप्रचयकी प्राप्तिको आनापान पर्याप्ति कहते हैं। यह पर्याप्ति भी इन्द्रिय पर्याप्तिके अनन्तर एक अन्तर्मुहूर्त काल व्यतीत होनेपर पूर्ण होती है। भाषावर्गणाके स्कन्धोंके निमित्तसे चार प्रकारकी भाषारुपसे परिणमन करनेकी शक्तिके निमित्तभूत नोकर्म पुद्गलप्रचयकी प्राप्तिको भाषा पर्याप्ति कहते हैं। यह पर्याप्ति भी आनापान पर्याप्तिके पश्चात् एक अन्तर्मुहूर्तमें पूर्ण होती है। अनुभूत अर्थके स्मरणरुप शक्तिके निमित्तभूत मनोवर्गणाके स्कन्धोंसे निष्पन्न पुद्गलप्रचयको मन:पर्याप्ति कहते हैं अथवा, द्रव्यमनके आलम्बनसे अनुभूत अर्थके स्मरणरुप शक्तिकी उत्पत्तिको मन:पर्याप्ति कहते हैं। इन छहों पर्याप्तियोंका प्रारम्भ युगपत् होता है, क्योंकि, जन्म-समयसे लेकर ही इनका अस्तित्व पाया जाता है। परंतु पूर्णता क्रमसे होती है। तथा इन पर्याप्तियोंकी अपूर्णताका अपर्याप्ति कहते हैं।

शंका --- पर्याप्ति और प्राणमें क्या भेद है?

समाधान --- नहीं, क्योंकि, इनमें हिमवान, और विन्ध्याचल पर्वतके समान भेद पाया जाता है। आहार, शरीर, इन्द्रिय, आनापान, भाषा और मनरुप शक्तियों की पूर्णताके कारणको पर्याप्ति कहते हैं। और जिनके व्दारा आत्मा जीवन संज्ञाको प्राप्त होता है उन्हें प्राण कहते हैं। यही इन दोनोंमे भेद है। वे प्राण पांच इन्द्रिया मनोबल, वचनबल, कायबल, आनापान और आयुके भेदसे दश प्रकारके हैं।

शंका --- पाँचो इन्द्रियाँ आयु और कायबल ये प्राण संज्ञाको प्राप्त होवें, क्योंकि, वे जन्मसे लेकर मरणतक भव (पर्याय) को धारण करनेरुपसे पाये जाते हैं। और उनमेंसे किसी एकके अभाव होनेपर मरण भी देखा जाता है। परंतु उच्छ्वास मनोबल और वचनबल इनको प्राण संज्ञा नहीं दी जा सकती है, क्योंकि, इनके विना भी अपर्याप्त अवस्थामें जीवन पाया जाता है?